Chap - 5

पंचम अध्याय

दलित-जीवन पर आधारित

शैलेश मटियानी की कहानियाँ

प्रास्ताविक : ---

शैलेश मटियानी एक महान कहानीकार हैं, किन्तु हिन्दी के शिविरपंथी कहानी-आलोचकों ने उनके साथ घोर अन्याय किया है । अधिकांश आलोचकों ने आंचलिक कहानी के खाते में उन्हें डालकर अपने कर्तव्य की इतिश्री समझ ली है, जबकि मटियानीजी की कहानियों के कई आयाम हैं। हिन्दी के अधिकांश कहानी-संकलनों को उठाकर देखिये । उसमें शैलेश आपको नदारद मिलेंगे । डा.सत्यकाम विद्यालंकार का एक कहानी संकलन है - ''आठ श्रेष्ठ कहानियाँ''। हमने सोचा कि शायद इस कहानी संकलन में मटियानीजी की कोई कहानी मिलेगी। परंतु हमें निराशा ही मिली ।[१] डा.ललित शुक्ल की ''आठ कहानियाँ'' में भी नहीं है ।[२] डा. शेष आनंद मधुकर का संकलन ''प्रतिनिधि कहानियाँ'' देखा । उसमें ग्यारह कहानियाँ संकलित हैं, पर उसमें भी नहीं है ।[३] डा.परमानंद श्रीवास्तव का कहानी-संकलन ''कथान्तर'' काफी सुचिंतित और स्तरीय माना जाता

है, पर वहाँ भी निराशा ही हाथ लगती है ।[४] डा.देवीशंकर अवस्थी कहानी-साहित्य के अच्छे विवेचक माने जाते हैं। उनके कहानी-संकलन ''कहानी-विविधा'' में देखा, परंतु वहाँ भी मटियानीजी की कोई कहानी नहीं है ।[५] डा.दूधनाथसिंह भी काफी सुलझे हुए आलोचक माने जाते हैं। उनके द्वारा संपादित ''सार्थक कहानियाँ''कहानी-संकलन देखा। पर उसमें भी मटियानीजी का कोई अस्तित्व नहीं है ।[६] दूधनाथसिंह स्वयं इलाहाबाद के हैं और मटियानीजी एक लंबे अरसे तक इलाहाबाद में रहे हैं, पर फिर भी उनके कहानी-संग्रह में मटियानीजी की कोई कहानी न होना, एक परम आश्चर्य की बात है । यह सूची अभी और लम्बी हो सकती है, परन्तु उसके विवाद और कारणों में न जाते हुए केवल यही कहना है कि सिर्फ एक अपवाद को छोड़कर हिन्दी के किसी प्रतिनिधि कहानी-संकलन में मटियानीजी की कहानी नहीं है ।

वैसे तो हिन्दी में कई कहानीकार हैं और आवश्यक नहीं कि प्रत्येक कहानीकार की कहानी ऐसे संकलनों में रहे, परन्तु जो लेखक कहानी-कला के प्रति समर्पित हों, जो लगातार आधी सदी तक कहानी लिखता रहा हो, जो कहानी के पात्रों के बीच में जिया हो और जो एक श्रेष्ठ कहानीकार हो ऐसे कहानीकार की कहानी का न होना आश्चर्य और आघात की बात है ।

ऊपर जिस अपवाद की बात की है, वह अपवाद है राजेन्द्र यादव । राजेन्द्र यादव ने सर्वप्रथम इस शिविरपंथी आलोचना की सीमा का उल्लंघन करते हुए ''एक दुनिया समानान्तर'' में शैलेश मटियानी की ''प्रेतमुक्ति'' कहानी को स्थान दिया ।[७] अतः कह सकते हैं कि मटियानीजी हिन्दी के एक अत्यन्त सशक्त किन्तु उपेक्षित कहानीकार हैं । कहानी आंदोलनों तथा उनसे सम्बद्ध फतवों से न जुड़ने के कारण ऐसा हुआ है । मटियानीजी मानते हैं कि ''कहानी'' में ''कहानीपन'' होना चाहिए और यह कहानीपन उनकी कहानियों में प्रेमचंद की तरह, रेणु की तरह विद्यमान हैं ।

मटियानीजी की कतिपय कहानी-विषयक अवधारणाएँ.: ---

मटियानीजी की कहानियों पर कुछ कहने से पूर्व उनकी अपनी धारणाएँ कहानी के विषय में क्या थी, यह जान लेना भी आवश्यक हैं। कहानी के संदर्भ में एक स्थान पर वे कहते हैं : ''समस्त सृजनात्मक कलाएँ एक आदमी की कहानी कह सकने से ही जुड़ी है; क्योंकि कहानी सिर्फ़ आदमी की हो सकती है और आदमी ही कहानी कह सकता है। कहने के प्रकार जरूर भिन्न है।[८] जिस प्रकार गज़ल के शेर कहे जाते हैं, ऐसे ही कहानी भी कही जाती है, फिर भले ही उसे लिखित रूप दिया जाय।

इसी संदर्भ में आगे वे कहते हैं - ''कहानी लिखना आदमी को लिखना बन जाए, तब ही माना जा सकता है कि उसे पढ़ते आदमी को पढ़ रहे होने की अनुभूति हो सकेगी। तब ही जाना जा सकेगा कि आदमी के पृष्ठ अपार हैं और उस अपार की ओर इशारा करना ही कहानी की भूमिका बांधना है।''[९]

कहानी कहने का काम कितना कठिन है उसका संकेत ''बर्फ की चट्टाने''(बड़ा संकलन) की भूमिका में मटियानीजी ने दिया है। इस संदर्भ में वे कुमाऊँ की लोकबोली की निम्न पंक्तियों को उद्धत करते है: ''कौ लोटा काथ-बाथा/सुण काला तु/काणैले चोरी करि/दौड़ डुणा तु!''[१०] अर्थात् गूंगे तुम कहानी कहो। बहरे तुम इसे सुनो। अंधा चोरी करके भाग गया है- लंगड़े, तुम इसे दौड़कर पकड़ लो। यह है कहानी। कितना कठिन? कितना मुश्किल काम? गूंगे का कहना, बहरे का सुनना, अंधे का चोरी करना, और लंगड़े का दौड़ना- ये सब असंभव काम हैं। ''मनुष्य की कहानी कहना भी उतना ही मुश्किल और कठिन कार्य है। आदमी को कहना समुद्र और आकाश को कहने से काम कठिन नहीं। जितना कहो उसे, उतना ही ''और कहो, और कहो''कहता सुनाई पड़ेगा।''[११]

समुद्र कितना अपार और अथाह होता है। मनुष्य भी उतना ही अथाह

और अपार होता है । बहुत-से लोग उसे समझने का दावा करते हैं । परंतु अनुभवी और ज्ञानी कह सकते हैं कि उनके दावे कितने पोले और व्यर्थ हैं । समुद्र की तह में क्या-क्या समाया हुआ है, उसे बताना बड़ा मुश्किल है, उसी प्रकार एक मनुष्य के मन में क्या है, और कैसे वह पल-पल परिवर्तित होता है, उसे बताना भी बड़ा कठिन काम है, अनंत आकाश के तारों को गिनने के समान।

जिस लेखक ने कहानी के संदर्भ में इस प्रकार के प्रतिमान रखे हों उसकी कहानियाँ कमजोर कैसे हो सकती हैं? भारत के बृहत्तर मानव-समाज का उनका निरीक्षण काफी गहरा है । उनकी शिक्षा अधिक नहीं थी, परंतु एकलव्यसाधना से उन्होंने काफी अर्जित किया था। यह तो उनके साहित्य के अध्ययन से ज्ञात होता है कि उनमें संदर्भ कहाँ-कहाँ से और किन-किन स्रोतों से आते हैं । जहाँ तक मानव-जीवन के अनुभव का सवाल है, संसार की विश्वविद्यालय का सफा-सफा उन्होंने झांक रखा है । इस क्षेत्र में उनका अनुभव प्रेमचंद से भी अधिक व्यापक और गहरा है । प्रेमचंद के पास ग्रामीण जीवन का गहरा और अपरागत अनुभव था, किन्तु झोंपडपट्टी-फूटपाथ-सस्ती वेश्याओं का संसार, सस्ते होटल के बेयरों और छोकरों, रामाओं, कसबिनों, मिरासीनों, भिखारियों, कोढ़ियों, मराठी घाटनों, गुजराती सेठानियों, पारसी महिलाओं तथा दूसरे इसी प्रकार के गंदे-गलीच जीवन का व्यापक अनुभव जितना मटियानीजी के पास है उतना कदाचित हिन्दी लेखकों में किसी के पास नहीं है ।

राजेन्द्र यादव ने शैलेश मटियानी के कथाकार का मूल्यांकन करते हुए उनकी तुलना पश्चिम के तीन महारथियों से की है- गोर्की, जैकलंदन और ज्यां जेने । यथा- ''दरअसल उनकी असली जमीन वही थी जहाँ से वे निकल भागे थे- यानी वंचितों और दलितों की संघर्ष भरी दुनिया। यहाँ मुझे फुटपाथों और घूरे से उठे हुए तीन लेखकों का अनायास ध्यान आ रहा है- गोर्की, जैकलंदन और ज्यां जेने । बम्बई की जिस जिन्दगी का मटियानी बार-बार जिक्र करते हैं इन तीनों लेखकों के विश्वविद्यालय भी वहीं थे । उन्हीं ''निचली गहराइयों ने'' गोर्की की संघबद्धता को वह

वैचारिक ऊर्जा दी जहाँ वे संघर्षशील मानवता के मंत्रद्रष्टा बनकर उभरे। असमानता, सामाजिक अन्याय, शोषण के विरूद्ध लड़ाई, विषमता और अमानवीयता से जूझते हुए लोग। माँ जैसा उपन्यास। इस यातना और संघर्ष से जुड़कर शायद मटियानी भी दूसरे गोर्की हो सकते थे। हावर्ड फास्ट या स्टीन बैक हो सकते थे। वे जैकलंदन की तरह जंगलों और समुद्र के भेड़ियों, बाघों लुटेरों और जल-दस्युओं के खिलाफ़ अपराजेय जिजीविषा की लोमहर्षक कहानियाँ लिख सकते थे। मटियानी ने भी तो अपने समाज के जंगली भालुओं, सूअरों, बाघों, भेड़ियों, सांपो और लुटेरों की आपराधिक दुनिया से मुठभेड़ें कम नहीं की थी। --- ज्यां जेने तीसरा लेखक है जो मुझे मटियानी के साथ याद आता है। जेने अनाथ था, उसे माँ-बाप का पता नहीं था। उसकी सारी शिक्षा चोर, लुटेरों, लफंगों और समलिंगी हत्यारों की संगत में हुई थी। वह जेलों और जुआघरों में बड़ा हुआ। उसने इन्हीं अनुभवों पर ''एक चोर की बही''(ए थीफ्स जर्नल) पुस्तक लिखी। उसने जिंदगी का जैसा अतार्किक और भयानक रूप देखा वहाँ उसे अपने और दुनिया के होने का कोई तर्क समझ में नहीं आता था।''[१२]

इन लेखकों के अतिरिक्त मंटो,कृश्न चंदर, शरणकुमार निंबाले, जगदम्बाप्रसाद दीक्षित, जयंत दलवी, ओमप्रकाश वाल्मीकि आदि लेखक ऐसे हैं जिनके पास इन ''निचली गहराइयों'' के अनुभव हैं। आधुनिक कथाकार तथा आलोचक पंकज बिष्ट ने यथार्थ ही कहा है- ''संभव है कि अगर उन्हें इस तरह से अकेला नहीं किया जाता तो पूरी संभावना थी कि वह एक ऐसे क्रांतिकारी लेखक के रूप में उभरते जो हिन्दी साहित्य में प्रेमचंद से ऊपर नहीं तो उनके समकक्ष अवश्य होता। यह बात और है कि वह आज भी प्रेमचंद के बाद के हिन्दी के सबसे महत्वपूर्ण कथाकार हैं।''[१३]

मटियानीजी ने दर्जनों उपन्यासों के अतिरिक्त डेढ़-सौ दो-सौ कहानियाँ लिखी हैं। २४ अप्रैल २००१ को उनका निधन हुआ। निधन के कुछ महीने पूर्व भी उनकी कहानियाँ प्रकाशित हुई थीं। उनका कहानी-लेखन

सन् १९५४ से प्रारंभ हुआ और सन् २००१ तक निरंतर लिखते रहे। इस प्रकार उनके कहानीकर का रचनात्मक व्याप लगभग अर्ध-शती का रहा है। प्रस्तुत अध्याय में उनकी उन कहानियों का अनुशीलन है जो दलित-जीवन पर आधारित हैं। कहानियों के अनुशीलन के पूर्व उनकी एक अवधारणा को प्रस्तुत करने का मोह-संवरण नहीं किया जा रहा है - ''मेरी मान्यता यह रही है कि यदि साहित्यकार स्वयं शोषित या पीड़ित न भी रहा हो, तो भी उसे शोषितों-पीड़ितों का पक्षधर होना चाहिए, न कि शोषकों का। वर्ण-वर्ग-व्यवस्था और वादों से परे, साहित्यकार की एक अलग स्थिति होती है, जहाँ वह तटस्थ भाव से साहित्य-सृजन के अतिरिक्त, ''कौंच-वध'' की करूणा से संवेदित और व्याघ की हिंसा-वृत्ति के प्रति क्रुद्ध होता है। वाल्मीकि-धर्म-साहित्यकार यदि पीड़ितों-अभिशप्तों के प्रति संवेदना-सहानुभूति नहीं रखता, तो वह जन-कल्याण के संगमरमरी सोपानों से लुढ़ककर, जन-शोषकों की कुत्सित-शरण में ठौर पाता है और उसका स्वधर्म सिर्फ यशार्जन, धनार्जन और पुस्तकों के प्रकाशन तक ही सीमित हो जाता है।''[१४]

(१) सतजुगिया आदमी : ---

यह कुमाऊँ प्रदेश के डोम-चमार जाति पर आधारित कहानी है। कुमाऊँ प्रदेश में अधिकांशतः इस जाति के नामों के पीछे राम शब्द लगता है। प्रस्तुत कहानी के हरराम-परराम पिता-पुत्र है। गाँव के तिवारीखोला के पंडित केशवानंद की भैंस मर गयी है। तिवारीखोला से तीन बार बुलावा आ चुका पर परराम ने साफ इन्कार कर दिया कि वह मरी भेंस नहीं खींचेगा।

पंडित केशवानंद के तंत्र-मंत्र और रिद्धि-सिद्धि से हरराम आतंकित है। वह थर-थर कापता है कि कहीं पंडितजी कुपित होकर उसके बेटे के पीछे कालीनाग न छोड़ दे। कहानी में केशवानंद के पिता पंडित राधवानंद की सिद्धि का चित्रण भी हरराम के मुँह से कई बार आया है। इधर

ब्रिटिश-शासन में कुमाऊँ प्रदेश के कई डोम-शिल्पकार पढ़-लिखकर ऊँचे ओहदों पर पहुँच गये थे। रायबहादुर किसनराम भी उनमें से एक हैं। परराम पर रायबहादुर का ही प्रभाव है। उसने गाँव के सभी दलित युवकों को संगठित किया है और यह तय किया है कि मरते मर जायेंगे पर जिन कामों से लोग उनको नीच-कमीन और म्लेच्छ समझते हैं वे काम हरगिज नहीं करेंगे। मरे हुए ढोर खींचने नहीं जायेंगे। मरी हुई भैंस का शिकार (मांस) नहीं खायेंगे।

हरराम अपने बेटे परराम की इस बात को लेकर बहुत चिंतित है। परराम जीतराम लुहार के बेटे बचेराम की बैठक में था। वहाँ पहुँचकर वह क्रोध में दहाड़ते हुए परराम को कहता है - "अरे, ओ रे परराम! अपनी महतारी के मुश्यार! जरा बाहर निकल तो। --- क्यों रे अधरमी! नहीं मानेगा तू मेरी बात? आ गया क्या तेरा भी सत्यानाश का बखत! तेरी बुद्धि विपरीत हो गयी, जो म्लेच्छ होकर बर्मज्ञानी लोगों से बैर साध रहा? डंस लेगा कालीनाग तुझे--- कपूत उपज गया स्साला मेरे खानदान में। अपने पुरखों की नाक काटने पर अड़ गया कमीना। मंतर मार देंगे मूठ में आचमन का जल भरके, तो कालीनाग--- जिन लागों का इस नौखंड धरती पर राज चल रहा, वो इंगरोज साहब लोग तक जिनको अपनी टोप झुका रहे, उन महाज्ञानियों से टक्कर लेगा तू?"[१५]

इस प्रकार हरराम द्वारा धिक्कारे जाने पर परराम को गुस्सा आ जाता है और वह चिल्लाते हुए कहता है - "बौज्यू, कालीनाग तो न पंडित राधवानंद की मुट्ठी में था, न केशव पंडित के आचमन में है। कालीनाग तो असल में तुम जैसे मूरख लोगों की आत्मा और बुद्धि से लिपटा हुआ और पूरे शिल्पकार खानदानों को डंसता ही चला जा रहा है। हम डोम लोगों की आत्मा और बुद्धि को एक जहर तो जन्म-जन्मांतरों से लगा हुआ - ऊँची जात के लोग हमें कुत्तों से भी ज्यादा अछूत मानते आये। म्लेच्छ कहकर दुत्कारते आये। दूसरा कालीनाग तुम जैसे हमारे पुरखों की दुर्बुद्धि का हमें लपेटता रहा। तुमने कहा, जैसे कुत्तों के कबीले में कुत्ते ही पैदा होते हैं, ऐसे हम म्लेच्छों के कबीले में म्लेच्छ ही पैदा

होंगे। तुम लोगों का अंधा खून हम लोगों की नसों में भर गया। कालीनाग तो आरों को डंसता है, मगर हम निर्बुद्धि डोमों की बुद्धि हमको डंसती रही। जैसे ही हम सिर उठाकर जीने की कोशिश करते हैं, वैसे ही यह दुर्बुद्धि का नाग डंसने लगता है। मेरे भैंस की खाल नहीं खींचने, भैंस का शिकार नहीं खाने से अगर सत्यानाश होता है, तो रायबहादुर किसनराम का सत्यानाश क्यों नहीं हुआ?''[१६]

हरराम के भीतर जो पंडितजी के तंत्र-मंत्र का खौफ बैठा हुआ है, वह दूर नहीं होता। उससे नहीं रहा जाता और अपने एक बूढ़े साथी कमलराम को लेकर वह पंडित केशवानंद के यहाँ पहुँचता है। पंडित केशवानंद की धर्मपत्नी पद्मावती बौराणीज्यू पहले तो खूब बिगड़ती है। तब हरराम कहता है - ''बौराणीज्यू छिमा बड़न को धरम, नीच धरम अभिमान। --- आप तो गुसांयनी, हम कमजारों की माता के ठोर पर हैं। नादानों से भूल-चूक हो जाती है। आकाश के बादलों से कुपित हो जाये, बौराणीज्यू, तो धरती की धूल कहाँ जायेगी? ... मेरा परराम तो मूरख। शहर जाकर बिगड़ गया नालायक छोरा। ... धीरे-धीरे समझ जायेगा। गुसांयनी, पुरोहित गुसांई का कोप शान्त करा देना, मांई ... भैंस उठाने को मैं और कमलराम आ गये। एक-दो रस्सियां दे दो।''[१७]

हरराम की विनयशीलता से पद्मावती बौराणीज्यू का क्रोध कुछ शांत हो जाता है। रस्सियां देते हुए वह कहती है - ''शाबाश हरराम, शाबाश! आखिर कुछ भी हो, तू सतजुगिया आदमी है। अब तो इस संसार में से सारे धरम-करम उठते ही चले जा रहे हैं। अपने-अपने कुल-धर्म को लोग तिलांजलि देने लग गये। अरे, सत्य-धर्म ही नहीं रहेगा, तो शेषनाग भगवान को कहाँ से आधार मिलेगा।''[१८]

हरराम और कमलराम दोनों बूढ़े थे। भैंस को खींचने में हरराम का दम फूल जाता है और यह ''सतजुगिया आदमी'' मर जाता है। हरराम सोचता है शायद पंडित राधवानंद के मंत्र से ही भैंस हल्की पड़ जाये या उसका ही बल बढ़ जाये। ''तीन बार अपना पूरा-पूरा जोर लगाकर, हरराम ने हांफते हुए मुंह में ही मंत्र पढ़ा- ओम् बिश्नुर- बिश्नुर-

बिश्नुर ... ओम बिश्नुर- बिश्नुर- बिश्नुर ... ओम् बिश्नुर- बिश्नुर- बिश्नुर ... चोथी बार उसकी देह एक ओर लुढ़क गयी। कमलराम चीख उठा - "हरराम का तो सुरगवास हो गया है, बौराणज्यू?"[११] इन शब्दों के साथ कहानी समाप्त हो जाती है। यही प्रसंग दूसरे नाम-पात्रों के साथ मटियानीजी के एक उपन्यास "नाग वल्लरी" में भी आया है।

प्रेमचंदजी की "सद्गति" कहानी के नायक दुखिया और हरराम की स्थिति में एक तथ्य सामान्य है और वह यह कि दोनों ब्रह्म-देवता के कोप से डरते हैं और अपनी ताकत से ज्यादा श्रम करने पर दम तोड़ देते हैं। दुखिया अपनी पुत्री की सगाई की साइत को लेकर चिंतित था और हरराम अपने बेटे के लिए कि कहीं ब्रह्म-देवता उसका कुछ अनिष्ट न कर दें। "सद्गति" कहानी में गोंड पंडितजी का आलोचक था, यहाँ परराम। स्वाधीनता संग्राम के दौरान महात्मा गांधी तथा डा.बाबा साहब आंबेडकर के कारण दलितों में जो चेतना आयी है, उसका प्रतिबिंब इस कहानी में झलकता है।

(२) घुघुतिया त्यौहार : ---

कुमाऊँ प्रदेश में माघ की संक्रान्ति के समय एक त्यौहार आता है जिसमें कौओं को खीर-पूड़ी खिलायी जाती है और तब कौओं का भी महत्व बढ़ जाता है। गुजरात में श्राद्ध-पक्ष में ऐसा होता है। प्रस्तुत कहानी में इस "घुघुतिया" त्यौहार को प्रतीक रूप में लिया गया है। बिमलकोट गाँव में ठाकुर, ब्राह्मण और शिल्पकारों की आबादी है। शिल्पकारों की बस्ती को "डुमिया बिमलकोट" कहा जाता था। ये सभी ठाकुर-ब्राह्मणों के आश्रित होते थे। ओढ़, बढ़ई और लुहार के कामों के अलावा हल जोतने के काम भी शिल्पकार लोग अपने इन ठाकुर-पंडित-गुसाइयों के यहाँ पीढ़ी-दर-पीढ़ी से करते चले आ रहे थे। इनकी औरतें भी इनके यहाँ विविध सेवा-चाकरी में लगी रहती थीं।

देबराम भी ठाकुर कल्याण सिंह का हलवाहा रह चुका था। ठाकुर

की एक पुकार पर दौड़ा-भागा हाजिर होता था। पर आज लक्ष्मी ठकुरानी वाले मामले में पुरोहित जयवल्लभ गुरू के आंगन में पंचायत बैठनेवाली थी और पंचों में देबराम भी था। कल्याणसिंह लक्ष्मी ठकुरानी का ककिया ससुर था और जमीन के मामले में जो विवाद चल रहा था उसे लेकर पंचायत होने वाली थी। सुबह से कल्याणसिंह ''देबराम, देबराम'' के नाम की टेर लगा रहा था, पर देबराम है कि उसके कानों की जू नहीं रेंगती थी। पर आज देबराम मानो ''घुघुतिया त्यौहार'' का कौआ बना हुआ था। इस संदर्भ में लेखक की टिप्पणी है -

''और दिनों की बात होती, तो थोकदार कल्याणसिंह की एक ही पुकार पर देबराम के हाथों से तमाखू का चिलम एक ओर हट जाता और वह जल्दी-जल्दी ठाकुरों के मोहल्ले की ओर बढ़ते हुए घरवाली से कह जाता - ''चेतराम की महतारी, इस तमाखू की चिलम ससुरी को एक तरफ रख दे। पराये जाल-जंजालों में फंसी हुई जिंदगानी ससुर ऐसी ही पलती होती। दाल-भात भी अब थोकदारजी के यहाँ से लौट के ही खाऊँगा। ना जाने किस काम-काल के लिए पुकार रहे। ... मगर आज देबराम ने चिलम को जरा और कसके पकड़े रखा।''[२०]

स्वाधीनता-संग्राम के कारण जो चेतना जगी उससे दलित जातियों में भी कुछ विश्वास बढ़ा जो सामंतवादी मूल्यों को बड़ा अखर रहा था। कहानी में एक स्थान पर कल्याणसिंह देबराम को कहते हैं - ''कबसे पुकारते-पुकारते परेशान हो गया, यह नमहराम अब इस समय अपनी सवारी लिए आ रहा। अरे ! आजकल तो इन लोगों की नसें एकदम ऊपर चढ़ी हुई। सुराज क्या आया, इन लोगों के बाप का ही राज आ गया। अरे, सुसरो, जो चार मुट्ठी जमीन जोतने-कमाने को दे रखी, उसे तो छीन ही लूंगा, साथ ही, अपनी घर-गिरस्ती और खेती के कामकाजों में हाथ लगाने से भी फटकार दूंगा, तो ऐंठी-बैठी सब बिसर जाओगे। तब जाना ससुरी अपनी हरिजन पार्टी कौंगरेस के पास।''[२१]

जिस देबराम को ठाकुर इस प्रकार लताड़ते थे, वही देबराम आज अकड़ के साथ बैठा हुआ था, क्योंकि पंचायत में एम पंच के रूप में उसे

जाना था। आज वह ''धुधुतिया त्यौहार'' का कौआ बन गया था। इधर पहाड़ की दलित जातियों में जो बदलाव आया है उसे भी लेखक ने चिह्नित किया है - ''पहाड़ में शिल्पकारों के प्रति घृणा तो नहीं, मगर सवर्णों में शिल्पकारों को अपना चाकर और अछूत समझने की जो एक रूढ़ि चली आ रही थी, वह टूटी नहीं थी। मगर इधर कुछ लीक बदल रही थी। यह स्वाधीनता संग्राम का दौर था और गांधीजी का अछूतोद्धार आंदोलन जोर पकड़ चुका था। सागर की लहरें पहाड़ तक भी थपेड़े मारने लगी थीं। अब जिलास्तर के हरिजन नेताओं के साथ-साथ कांग्रेसी होने के दबावों, या गांधीजी की प्रेरणा में, कुछ सवर्ण नेता भी हरिजनों को ऊँचा उठाने की बातें करने लगे थे। इसी वातावरण मे शिल्पकारों ने भैंस का गोश्त खाना बन्द करना शुरू कर दिया था, बहुत-से तीन पाले की जनेऊ पहनने लगे थे और ''सेवा मानिये'' की जगह सवर्णों का भी ''जै हिन्द'' कहकर अभिवादन करने लगे थे।''[२२]

कई बार पुकारने पर भी जब देबराम ठाकुर कल्याणसिंह के पास नहीं गया तब गुस्से में भरकर ठाकुर ही चल दिये। देबराम की पत्नी जसुली जरा बात संभालने का प्रयत्न करती है, पर देबराम बिल्कुल स्पष्ट कह देता है - ''खैर बहाना करना तो बेकार है, हाँ थोकदार ज्यू। तमाखू की चिलम ही तो गुड़गुड़ा रहा था, कोई हवाई जहाज तो नहीं उड़ा रहा था। ... मगर बात असल में ठहरी कि और दिनों की बात अलग हुई - आज की बात अलग।''[२३] इस पर थोकदार व्यंग करते हुए कहते हैं - ''हाँ, हाँ, देबराम, आज जरूर अलग बात हुई। ... आज तू त्यौहार का कौआ जो ठहरा?''[२४]

देबराम उनके व्यंग को समझ जाता है, पर शांत-धीर स्वर में कहता है - ''यों तो आप हमारे सांई गुसाईं हुए, थोकदारज्यू! जब कभी आपकी एक पुकार सुनते ही मैं और मेरी घरवाली, दोनों परोसी हुई थाली को छोड़कर भी, आपके काम के लिए दौड़ते रहने वाले हुए। मगर आज मेरा पंचायत में जाने का दिन ठहरा। चार सयाने उधर से किसी आदमी को जरा ढंग से बुलाने को भेजेंगे कि पंच देबराम को बुला लाओ,

तभी मेरा जाना भी अच्छा रहेगा। आपने बेकार ही हांक लगाने की तकलीफ उठाई।''[२५]

देबराम की इस दृढ़ता से थोकदार जरा नरम पड़ते हैं और कहते हैं - ''तो, अब तो चल तू। अपने घर से यहाँ तक तो मैं खुद तुझे बुलाने आ गया हूँ, इससे ज्यादा। तुझे और क्या चाहिए ? जरा जल्दी-जल्दी चल अब। थोड़ी देर में तो पंचायत ही बैठ जाने वाली। इस मौके पर तू जरा मेरे पक्ष में ठीक से बोलेगा, तो फिर आगे मैं भी तेरा ध्यान रखूंगा जरूर। ताली तो दोनों हाथों से बजनेवाली हुई। ये तो कहावत ही हुई कि आज तेरी, कल मेरी बारी- तभी जगत में निभती यारी !''[२६]

थोकदार की इस बात पर देबराम जो कहता है, वह कोई ''कौआ'' नहीं, ''हंस'' ही कह सकता है और यही इस कहानी का व्यंग्य है - ''सो तो आप सांई-गुसांई ही ठहरे, थोकदारज्यू ! आप नहीं, तो फिर और कौन ठहरा हमारी जताने वाला? मगर मैं इस समय तो आपके साथ नहीं ही चल सकता। सरपंच पद्मादत्त ने मुझसे कह रखा कि पंचयात के समय आदमी भेजकर, बुला लेंगे। ... और जहाँ तक पक्ष लेने का सवाल हुआ, तो पंच का आसन धरमराज का आसन होता। वहाँ पर तो न्याय, इंसाफ का ही पक्ष लेना पड़ता, इस धरमशास्तरी बात को तो आप हमसे ज्यादा जानने वाले हुए ?''[२७]

प्रस्तुत कहानी का देबराम कुछ जागरूक और चेतना-संपन्न है। वह अपने वर्ग के लोगों को प्रेरित करता है कि वे अपने बच्चों को पढ़ावे। इस संदर्भ में लेखक की जो टिप्पणी है वह अवलोकनीय है - ''देबराम की आंखों में आजकल एक और सपना तैरने लग गया था। अगर उसका बेटा चेतराम हाईस्कूल भी पस कर ले और कभी पटवारी-पेशकर बनकर इसी पट्टी में आ जाए ,तो उसका सिर औरों से हाथ-भर ऊँचा हो जाएगा। आज जो ठाकुर-ब्राह्मण उसे डुमड़ा-डुमड़ा कहते हैं, कल वही नमस्कार करने लग जायेंगे। जब-जब उनकी गरज पड़ेगी, चेतराम को ''पटवारीज्यू पेशकारज्यू'' कहते फिरेंगे। देबराम की अवमानित आत्मा उसे कचोटती और वह चाहता कि उसकी जात-बिंरादरी के लोग भी इस चाकर परंपरा से

मुक्ति पाएँ। वह अक्सर अपने बिरादरों से कहा भी करता - "यारो, एक जानवर तो होते घास खानेवाले, मगर अन्न खानेवाले जानवर हमीं लोग ठहरे। अगर शिक्षा नहीं हुई, सिर ऊँचा करके चलने का अभिमान नहीं हुआ, और जात-बिरादरी को आगे बढ़ाने की कामना नहीं हुई, तो घास और अन्न में फर्क ही क्या हुआ?"[२८]

देबराम ने जब से होश संभाला, माता-पिता को ठाकुर कल्याणसिंह के माता-पिता की चाकरी करते और उनकी गालियों सुनते-सहते देखा। सयाना हुआ, तो घरवाली जसुली के साथ थोकदार-थोकदारनी की चाकरी करता चला आ रहा है। देबराम पिछले कई बरसों से यही सोचता चला आ रहा था कि इस चाकरी की जड़ों का आखिर कहाँ, और कब जाकर उच्छेदन होगा? बिरादरी के लोग जो ठाकुर-ब्राह्मणों की धौंस सहने को मजबूर हैं, यह सिलसिला आखिर कहाँ तक चलेगा? यहाँ तक कि उनकी बहू-बेटियों पर आंख-अंगुली उठाते भी ऊँची जात के लोग हिचकते नहीं और अपनी आर्थिक विवशताओं से दबे कई शिल्पकार बहुत खुलकर विरोध नहीं कर पाते। इस बेइज्जती को कब तक ढोते चले जाएँगे शिल्पकार? देबराम को अपमान का यह शूल निरंतर चुभता ही रहता। लेकिन संजोग देखिये कि आज देबराम के लिए जिन्दगी में धुधुतिया-पर्व आया हुआ है।"[२९]

इस प्रकार प्रस्तुत कहानी का देबराम "कब तक पुकारूँ" के सुखराम तथा "सतजुगिया आदमी" के परराम की भांति चेतना-संपन्न व्यक्ति है और उसे अपनी जाति-बिरादरी की अपमानित-अवहेलित-लांछित से पीड़ा और वेदना होती है। उसके भीतर का स्वाभिमान जग गया है और तभी ठाकुर कल्याणसिंह से वह खरी और सच्ची बात कह सका है। प्रस्तुत कहानी की तुलना प्रेमचंद की "पंच परमेश्वर" कहानी से भी कर सकते हैं। यद्यपि अभी देबराम का फैंसला सामने आया नहीं है, तथापि कहानी में इसके पर्याप्त संकेत मिलते हैं कि देबराम न्याय का पक्ष लेगा।

(३) नंगा : ---

''नंगा'' कहानी दलित-जीवन की एक दूसरी त्रासदी को उकेरती है । कहानी की नायिका रेवती शिल्पकारिन है । उसका पति हरिराम ठाकुर गुमानसिंह का हलवाहा है । ठाकुर ने गाँव के नीचे कोसी नदी के किनारे अपनी जमीन पर हरिराम और रेवती का छाना बना दिया था। वे लोग अपनी पुश्तैनी बाखली से वहाँ रहने आ गये थे। पर कुछ समय बाद हरिराम का निधन हो जाता है । रेवती पुनः अपनी बाखली में चली जाना चाहती थी, पर ठाकुर ने उसे रोक लिया। शुरू से ही रेवती पर ठाकुर की नजर थी। अतः ठाकुर रेवती को समझाते हैं : ''कौन-सा घर ऐसा होता, जिसमें कोई मरता नहीं? और कौन-सा ऐसी औरत जो विधवा नहीं होती? मरने से ही घर छोड़ दें, रेवती, तो आज सारे लोग जंगलों में रहते । फिर तेरा पुश्तैनी घर तो अब टूटने भी लग गया।''[३०]

ठाकुर चाहता तो उस पुश्तैनी मकान को ठीक भी करवा सकता था। पर वह ऐसा क्यों चाहता? रेवती वहाँ रही। ठाकुर का आना-जाना लगा रहा। अनाज, कपड़े-लत्ते, रेवती की हर जरूरत पूरी होती गई। शुरू-शुरू में रेवती को बुरा लगता था, पर बाद में वह भी उस जादुई बहाव में बहती गई। परिणाम जो होना था, हुआ था। रेवती को ठाकुर का गर्भ रहा। पहले तो गर्भ को गिराने के बहुतेरे प्रयत्न किए , परंतु जब गर्भ नहीं ही गिरा, तो यह तय हुआ कि बच्चे के जन्म के बाद उसे कोसी में बहा दिया जाए।

जब दर्द उठना शुरू हुआ, रेवती ने छोटे देवर को भी दूर मायके भेज दिया। तब तक उसका भी इरादा यही था कि हलकी होते ही, रात को नदी में बहा आयेगी। मगर हो जाने के बाद की मूर्छा ना टूटते ही सारी वितृष्णा भी टूट गई। ''मगर इस वक्त तो जब धरती माता ही नहीं चीख रही कि हटाओ इस पाप के बोझ को मेरी छाती पर से हटाओ, तो वही कैसे बहा आयेगी कोसी में? कहीं बोल पड़ी कोसी भी कि -''ला, इधर ला, मैं पिलाऊँगी इस अपनी छाती का पानी- धिक्कार है तुझ जैसी डाइन

को...तो?... नहीं, कहीं कोई उपस्थित नहीं था उस वक्त था छाने में या उसके आसपास, लेकिन जाने हवा ही कह रही थी कि मरना एक दिन सभी को है, रेवती ! ...मगर औरत की जो शान, महतारी के तौर पर जीने मे हुई..."[31]

रेवती बच्चे को जन्म देती है। ठाकुर-ठकुरानी उस पर बहुत दबाव डालते हैं कि वह उसे मार डाले, पर रेवती के अन्दर की माँ जाग जाती है। वह ठकुरानी से कहना चाहती है - "गुंसाइनी तुम्हारे ठाकुर ने घर बहुत सोच-समझकर लगवाया, मगर जिसे नौ महीने ढोया, उसे इतनी जल्दी गाड़बगो (नदी में बहा देना) देने की ताकत मुझमें नहीं।"[32] और उसी बच्चे के अधिकार के लिए रेवती जब पंचायत बिठाती है तो गुमानी ठाकुर साफ मुकर जाता है। पंच भी न्याय देने के बदले रेवती को ही दोषी ठहरात हैं -

"गुमानी ठाकुर पर झूठी तोहमत लगाने की नादानी के लिए अगर रेवती माफी मांग ले और पंच लिखित माफीनामे पर अंगूठा लगा दे, तो पंच यह सिफारिश जरूर कर सकते हैं कि एक बेवा लावारिस औरत पर दया करके, उसके पति को दी हुई जमीन में से थोड़ी-बहुत उसी के कब्जे में रहने दी जाये।"[33]

तब रेवती का पुण्य-प्रकोप अचानक जाग उठता है और वह सबको खरी-खरी सुनाती है - "पंच महाराज लोगों, हंसों की पांत तो जरूर खा गई, मगर कौवे की जात अपना धर्म नहीं छोड़ेगी। जिस दगाबाज ने थूक के चाट लिया, उसकी जमीन में पांव रखने से मर जाना बेहतर ! ... होगा कहीं परमेश्वर, तो कभी-न-कभी मेरा इन्साफ वही करेगा। मैं तो अपनी संतान की हत्या खुद नहीं करूँगी। ... ठकुरानी नहीं शिल्पकारनी हूँ, मिहनत-मजदूरी से गुजर करूँगी। बैल को बेच दूंगी। गैया को यहीं बांध लूंगी, मगर हूँ अगर मैं हरराम की घरवाली और इस नरवा की महातारी... पी रखा है मैंने भी अगर अपनी महतारी का दूध - तो आज के दिन से इस गुमानी ठाकुर की जमीन और मकान में हगने-मूतने भी नहीं जाऊँगी।"[34]

इस लड़ाई में रेवती का चचिया ससुर रेवती के पक्ष में था। इसलिए बिरादरी के लोगों से भी वह नाराज था और पंचायत में उपस्थित भी नहीं हुआ। रेवती के पुण्य-प्रकोप से मानो गुमानी ठाकुर का गुमान पिघल गया और वह रेवती के पीछे-पीछे भागा तो कोसी नदी के पानी में रेवती का चचिया ससुर सगतराम उसे दिखायी दिया। नदी में मछली पकड़ने की जाल फेंकते-फेंकते उसकी लंगोट मूंज के रस्सी की तरह इकहरा हो गयी थी और गुमानी ठाकुर को लगा कि सगतराम जान-बूझकर उसे चिढ़ाने के इरादे से ही इस तरह पानी में नंगा खड़ा है।[३५]

इस प्रकार कहानी को लेखक ने एक कलात्मक मोड़ दे दिया है। सगतराम मानो कहना चाहता है कि नंगा वह नहीं गुमानी है, नंगा वह पंचों का समाज है। नंगी यह व्यवस्था है।

(४) लीक : ---

इस कहानी में लेखक ने बड़े व्यंग्यात्मक ढंग से जमाने के नये तेवरों की बात कही है। चारों तरफ परिवर्तन हो रहे हैं। रीति-रिवाज की पुरानी लीक टूट रही है। लोग नये जमाने की सुविधाओं को तो अपना रहे हैं, किन्तु अभी भी कहीं-कहीं पुरानी लीक को छोड़ने से कतरा रहे हैं। इसमें डुंगरी गाँव के ठाकुर गोपालसिंह की कथा को लेखक ने लिया है। जर-जमीन-जोरू तीनों मामलों में ठाकुर का कोई सानी नहीं है। अलमौड़ा-पिठौरागढ़ की नयी चौड़ी सड़क पर ठाकुर की नंबर आठ सौ उन्तीस मोटरगाड़ी दौड़ रही है। डुंगरी और उसके आसपास के कई गाँवों की जमीन पर ठाकुर का कब्जा है। ठाकुर गोपालसिंह के पिता किरपालसिंह ने अपनी छोटी पुत्री कलावती के लिए अलमोड़ा के सबलसिंह बौर के यहाँ से आये हुए रिश्ते को ठुकरा दिया था, यह कहते हुए कि "बौर को बेटी देने से, ऊँची जाति के किसी बेठौर गरीब को देना पसंद करूँगा"[३६] सबलसिंह बौर धन-दौलत के मामले में काफी ऊँचे थे, पर जाति के मामले में थोड़े-से नीचे थे। तब भी किरपालसिंह ने अपनी बेटी

का रिश्ता ठुकरा दिया था। परंतु ठाकुर गोपालसिंह को यह लीक छोड़नी पड़ रही थी। उनकी लाड़ली बेटी जानकी प्रोफेसर कुंडलनाथ से विवाह करना चाहती है और लगभग विद्रोहात्मक स्वर में अपनी कैंजा (सौतेली माँ) को बता चुकी है कि यदि ''बौज्यू ने बिड़लगों के गोपाल चाचा की जैसी हठवा दिता दिखाई, तो मैं गोली खाके तो नहीं मरूँगी मगर अपनी राजी-खुशी से कुंडल के साथ चली जाऊँगी।''[३७]

कुंडल कनफड़ा नाथ था। उसका पूरा कुनबा कई पीढ़ियों से जुआरियों और शराबियों का रहा है। परंतु कुंडल ''मेहल के निकृष्ट पेड़ में ऊँची जाति के सेव की कलम जैसा'' है। वह मिडिल पास करके इलाहाबाद जाता है और बच्चों को ट्यूशन पढ़ाते हुए डबल एम.ए. करके अलमोड़ा के डिग्री कालेज में प्रोफेसर बनकर आता है। एक ही साल हुआ था पर पूरे अलमोड़ा में ''प्रोफेसर कुंडलनाथख प्रोफेसर कुंडलनाथ होने लगा था।''[३८] जानकी नाइन्थ-पास सयानी लड़की है और कुंडलनाथ को चाहने लगी है। कुंडलनाथ भी उसे चाहता है। बेटी की जिद के आगे ठाकुर को झुकना पड़ता है। पंडित कीर्तिवल्लभ पहले कुछ नना-नुच करते हैं, पर बाद में अच्छे-खासे जजमान के खो जाने के डर से अपनी लीक यह कहकर बदल लेते हैं कि ''यत्र जजमानो, तत्र पुरोहितों''।[३९]

परंतु जाते-जाते ठाकुर के मन में एक बात बिठा देते हैं कि विवाह खूब धूमधाम और शानोशौकत के के साथ होना चाहिए ताकि उसकर तामझाम में छोटी जातिवाली बात दब-सी जाय। ठाकुर को भी यह बात जंच जाती है और वे कुंडलनाथ के यहाँ पहुँचते हैं और अपनी बात रखते हैं कि बारात बज्योली से न आकर अलमोड़े से आवे और बारातियों में कनफड़े नाथ ज्यादा न हों, प्रोफेसर, मास्टर आदि ज्यादा हों।

कुंडलनाथ सादगी से विवाह करना चाहता था, क्योंकि उसकी उतनी हैसियत नहीं थी। दूसरे इस मकाम पर पहुँचकर अपनी जातिबिरादरी के लोगों को छोड़ना नहीं चाहता था। वह एक स्वाभिमानी और खुददार युवक था। अतः ठाकुर जब लौटने लगते हैं तब कुंडल उनसे कुछ कहता है। उनके बीच का वार्तालाप इस कहानी को सार्थकता प्रदान करता हैः

"पुरखों की इस धूमधामवाली लीक का पालन करना क्या आप अपने लिए आवश्यक समझते हैं? आवश्यक? ...हाँ,हाँ, इस हालात में तो बहुत ही जरूरी समझता हूँ । ... यह मेरे लिए गौरव की चीज भी हो सकती है । तो जैसी आपकी इच्छा। मैं आपकी पितर-लीक का पालन करने को तैयार हूँ।

सच जमाई? गोपाल प्रधान खुशी से पलटा खा गए।

जी बिलकुल सच ! - कुंडल गंभीर स्वर में बोला - मगर जब बारात आपके यहाँ से बिदा होकर, मेरे घर पहुँच जायेगी, तब मैं भी अपनी पितर-लीक पर चलूंगा, क्योंकि हर आदमी के लिए अपने पितरों-पुरखों की लीक पर चलना एक गौरवपूर्ण स्थिति होती है। सो, मैं यह प्रोफेसरी और प्रतिष्ठा की जिन्दगी छोड़कर जुआरियों-शराबियों और चरित्रहीनों की मंडली में जाऊँगा, और अपने बाप-दादाओं की लीक पर चलते हुए, खूब जूआ खेलूंगा, खूब शराब पिऊँगा और खूब...."[४०]

"बस-बस" कहते हुए गोपाल पधान कुंडल के मुँह पर अपना हाथ रख देते हैं। कहानी का अंत इन पंक्तियों के साथ होता है - "जैसे अपनी डुंगरी गाँव की संकरी पगडंडी पर खड़े-खड़े, अलमौड़ा-पिठौरागढ़ की नयी चौड़ी सड़क पर दौडती हुई अपनी नंबर आठ सौ उडनतीस मोटर को देख रहे हों।"[४१]

इस प्रकार यहाँ लेखक ने आंतर जातीय विवाह की समस्या को बड़े मनोरंजन ढंग से प्रस्तुत किया है। आंतरजातीय विवाहों में भी इस प्रकार के विवाह तो बहुत कम देखेन में आते हैं जहाँ कन्या तो उच्च वर्ण की हों और वर निम्न या दलित जाति का हो। अपने उपन्यास "नाग वल्लरी" में भी मटियानीजी ने कृष्णा मास्टर (डोम जाति के) का विवाह गायत्री ठकुराइन से करवाया है।

(५) एक कॉप चा : दो खारी बिस्किट : ---

''एक कॉप चा : दो खारी बिस्किट'' बम्बई के गर्हित जीवन की वह काहनी है जिसमें पेट की आग बुझाने के लिए नसीम और करावा जैसी लड़कियों को अपने शरीर का सौदा करना पड़ता है। जहाँ एक तरफ विवशता और लाचारी के कारण बोसों और बोटियों को बेचना पड़ता है, वहाँ दूसरी तरफ वैभव-विलास में पलीं सेठानियाँ और प्रौढ़ाएँ जो अपने बूढ़े पतियों द्वारा संतुष्ट न होने पर शिकार की खोज में रहती हैं और जवान नौकरों, ड्राइवरों और वोचमैनों के द्वारा अपनी वासना-तृप्ति करती हैं। मटियानीजी ने अपने उपन्यास ''कबूतर-खाना'', ''बोरीवली से बोरीबन्दर तक'' तथा ''किस्सा नर्मदाबेन गंगूबाई'' में भी इस संसार को यथार्थतः उपन्यासित किया है। मटियानीजी की जिन कहानियों में ऐसी फुटपाली वेश्याओं के जीवन को चित्रित किया गया है, वह भी एक प्रकार का दलित-पलित जीवन ही है।

नसीम की माँ यू.पी. के जिला बस्ती से नसीब की मारी बम्बई में आयी थी। बम्बई में आकर वेश्यागिरी पर उसे गुजारा करना पड़ता था। वैसे वह बम्बई के मशहूर जम्सू दादा की रखैल भी रह चुकी है। नसीम का जन्म जम्सू से ही हुआ था, पर नसीम अपने बाप जम्सू से नफ़रत करती है, क्योंकि वह उसे भी उसकी माँ की तरह बिरयानी और कोफ्ता खिलाना चाहता है, दूसरे शब्दों में कहें तो उसे भोगना चाहता है। छः महीने पहले नसीम को न्यू यजदानी रेस्टोरां का आर्डरवाला हसनअली संभालता था। वह चला गया तबसे नसीम को फिर से खाने के लाले पड़ रहे थे। इस प्रकार अपने पेट की आग के लिए तो वह किसी के भी साथ सो लेती थी, परंतु अपने सच्चे दिल से प्यार तो वह फकत रामन्ना को करती है। रामन्ना भी बम्बई में मवालीगिरी और आवारागर्दी करके किसी प्रकार अपना पेट पालता है। रामन्ना कारवाली बाइयों को ''फण्टूशी'' और फुटपाली वाली बाइयों को ''मायूसी'' कहता है। ''फण्टूशी'' चेहरों से उसे उल्फत है, इश्क है। ''मायूसी'' चेहरों में उसकी माँ-बहन भी है।[४२]

उल्फत रामन्ना की ज़िन्दगी का टेस्ट है, मजा है। मोहब्बत रामन्ना की जिगर का दर्द है, जीने का आधार है। वहाँ से जहर बटोरता है, यहाँ से उसे अमृत मिलता है। रामन्ना भी नसीम को चाहता है। एक बार जब नसीम ने दो-तीन दिन से कुछ खाया नहीं था तब वह रामन्ना के पास जाती है। पर उस समय रामन्ना के भी कड़की चल रही थी। वह कहता है - ''उस दिन तो हम तुमेरेकु फकत उल्फत करने को गया था, मगर अभी मोहब्बत भी हो गया है। पण सोचता है, तुम हमेरे जिगर पर बिजली गिरा भी तो कड़काई में। क्या, आजकल अपना भी पोलपट्टी चल रिया है।''[४३]

रामन्ना के पास केवल एक चौली (दुअन्नी) थी। वह नसीम को देते हुए कहता है कि इससे पातल-भाजी खा लेना। पर नसीम मना करती है। वह कहती है - ''ऊँहुँ, अकेली कुछ नहीं खाऊँगी। चलो पहले तुम मेरे साथ मुहब्बत करो, फिर एक कॉप चा, दो खारी बिस्किट ले लेंगे.... अर्द्धा कप तुम पीना, अर्द्धा मैं पीऊँगी। एक किस्कुट तुम खाना, एक मैं खाऊँगी।''[४४]

ऐसा सोचकर वे दादर के पीछे पाइपों मे प्यार-मुहब्बत करने जाते हैं। जब नसीम पेटीकोट का नाड़ा खोलती है तब अचानक रामन्ना की नजर नाड़े से बंधे तांबे के छेदवाले पैसों पर पड़ती है। नसीम को नाड़े में पांच पैसे थे। रामन्ना की बहन करावा को भी ऐसे नाड़े में पैसे बांधने का शौक था। करावा भी अपना और रामन्ना का पेट पालने के लिए देह का सौदा करती थी। जब रामन्ना को मालूम होता है, तब वह अपनी बहन करावा को फटकारता है, जली-कटी बातें कहता है। जब करावा कहती है : ''दुनियावाले मुझ पर थूकते होंगे, लेकिन मैं तुम्हारे मुँह पर थूकती हूँ, कि तुम्हारे जैसे भैंसे-हाथी-सरीखा भाई होकर भी मुझे रोटियों के लिए तन का सौदा करना पड़ता है, मन का खून करना पड़ता है।''[४५] और ऐसा कहकर रामन्ना कुछ कहे उसके पहले ही वह सामने से आती हुई नागपुर एक्सप्रेस से कटकर वह आत्महत्या कर लेती है। रामन्ना जब उसकी लाश को देखता है, तब उसके पेटीकोट के नाड़े के साथ भी तांबे

के पैसे बंधे थे। अट्ठावन पैसे थे। रामन्ना को लगता है कि आज अट्ठावन बहनें कत्ल हो गयीं।

रामन्ना और नसीम प्यार की तैयारी ही कर रहे थे कि एक नक्ली पुलिसवाला मुफ्त में अपनी हवस बुझाने वहाँ आ जाता है। रामन्ना उसे पहचान लेता है और उसकी बुरी तरह से धुलाई करता है। वास्तव में वह एक भिखारी था। तभी रामन्ना ने नसीम के नाड़े से बंधे छेदवाले तांबे के पैसों को देख लिया था। उसके बाद नसीम कहती है - ''चलो'', पर तभी रामन्ना नसीम के हाथों को अपने हाथों में लेकर कहता है - ''हमेरा-जैसा डैमिश लोग होने से ही माँ-बहन का अस्मत कोई वैल्यू, कोई कीमत नहीं रखने को। एक कॉप चा, दो खारी बिस्किट का वास्ते जिसम का सौदा होने का! थू है हमेरे पर ... नस्सू, हमेरे को माफ करना। बोलो, हम तुम्हेरा भाई, तुम हमारा सिस्टर...हमारा करावा।''[४६]

कहानी का अंतिम वाक्य है - ''रामन्ना के प्यार पर गुरू-पत्नी भोगी चन्द्रमा शरमा कर देवत्य के अस्ताचल से नीचे लुढ़क गया था।''[४७]

(६) चिथड़े : ---

''चिथड़े'' कहानी में भी मानवता के चिथड़े जैसे चोर, मवाली, धोखेबाज़, पाकेटमार लोगों के जीवन को लेखक ने रूपायित किया है। यहाँ भी बम्बई का ही परिवेश है। गंदी कोल्हापुर के पास के किसी गाँव का एक भोला-भाला सरल युवक है। एक दिन गाँव में गेंदी का बचपन का दोस्त पांडु आता है। पांडु अब बम्बई में रहता है और उसने अपना नाम भी बदल दिया है। पांडु के बदले अब वह ''प्रीतम'' हो गया है। वह गेंदी को बम्बई नगरी के हरे-भरे ख्वाब दिखाता है और उसे बम्बई आने के लिए लुभाता है। गेंदी उसे पूछता है - ''नौकरी तो मिलेगी न?'' उसके जवाब में पांडु उर्फ प्रीतम कहता है - सागर में नहीं तो क्या गागर में मछली मिलेगी पगले।'' और ऐसा कहते हुए राह-खर्च के लिए गेंदी को दो-सौ तीन-सौ रूपये भी ले लेने को कहता है।''[४८]

गेंदी के पिता उसे खूब समझाते हैं कि बेटा ! शहर की ज़िन्दगी किसान के लिए रोगी होती है ।[४९] पर पांडु की बातों से गेंदी की आँखों तो चौंधिया गयी थी । वह टस से मस नहीं होता और उसके साथ चल पड़ता है ।

दादर स्टेशन पर जब गेंदी की आँख खुली तो उसने देखा कि पांडु गायब है । उसके रूपये भी उसने अपने पास रख लिये थे । गेंदी के पास अब फूटी कौड़ी नहीं थी । टिकिट-चेकर टिकट मांग रहा था । टिकट भी पांडु के पास ही था । अतः बिना टिकट सफर कने के जुर्म में गेंदी को एक दिन के लिए जेल की हवा खानी पड़ती है ।

जेल से छूटने के बाद गेंदी हतप्रभ-सा किंकर्तव्यविमूढ़ होकर अपने बिस्तर को छाती से लपेटे बैठा था कि एक दूसरा उठाईगीर उसे मिलता है । वह गेंदी की स्थिति को भांप जाता है और झूठी सहानुभूति जताकर उसका बिस्तर और बचा-खुचा सामान भी मार जाता है । यहाँ पर जो वार्तालाप है वह देखिए :

> ''दो मिनट की जगह, जब दो घंटे तक भी साथी न लौटा, तो गेंदी अधीर हो उठा ।

फाटक पर जाकर, लाला से पूछा -

> ''इधर जो साहब अभी गये थे, कब लौटेंगे?''
>
> ''कौन साहब?''
>
> ''अभी मेरा बिस्तर लेकर इधर गये थे, दो घंटे हुए ।''
>
> ''गया काम से, लाला बोला - ''अभी वो क्या लौटिंगा? ...अरे मवाली होइंगा । तुम काहेकु उसको अपना बिस्तरा दिया भाई?''
>
> गेंदी व्यथित होकर रो दिया - ''अब किधर जाएगा, क्या करेगा?''

लाला बोला - ''अभी खाली-पीली बूम मारने से क्या होईगा, भाई? इधर बड़ा दहूस लोग रहता है, अच्छा -सयाना का भी ''चीटिंग'' कर देता है ।''[५०]

अतः थक-हारकर गेंदी अपनी चांदी की करधनी बेचकर कोल्हापुर की टिकट कटवाकर गाड़ी में बैठ जाता है। कहानी का अंत इन शब्दों में है - ''बोरीबंदर को लौटते समय, गेंदी ने फोकलैण्ड रोड की उन खिड़कियों पर नजर डाली, जहाँ इन्सान कहाने वालों की माँ-बहिनों पाउडर-लिपस्टिक की भद्दी परतों से चेहरे को ढके हुए, सरे-बाजार नारीत्व का सौदा करती हैं। ... और जब गेंदी बोरीबन्दर से कोल्हापुर की गाड़ी में बैठा, तो उसने ट्रेइन की अध-खुली खिड़की से -विरक्ति और घृणा के साथ- फिर उस बम्बई को देखना चाहा, जहाँ किसी ढलती शाम को, हर खिड़की पर, इन्तजार का रेशमी पर्दा लटक जाता है। ... लेकिन, आज गेंदी की कल्पना के ये रेशमी पर्दे उन चिथड़ों में बदल गए, जिनको बोरीबंदर पर मानवों की पलीत जाति ढोती रहती है - भूखी और नंगी।''[५१]

(७) गरीबुल्ला : ---

गरीबुल्ला एक गरीब कलईगर मुसलमान है। कलई के बर्तनों की नगरी मुरादाबाद से वह बम्बई आया है और भिखमंगों की ज़िन्दगी गुजार रहा है। मुरादाबाद में उसका अच्छा-खासा नाम था, व्यवसाय था। वहाँ उसका छोटा-सा परिवार था- अम्मीजान और शमा बी। अपनी बीबी शमाबी को वह बहुत चाहता था। उसकी अम्मी भी उस पर जान छिड़कती थी। शमा बी की मुहब्बत का साया गरीबुल्ला पर मुरादाबादी कलई की तरह चढ़ गया था। ''गरीबुल्ला कभी-कभी ऐसा महसूस करता कि कलईगिर की जगह वह कातब (कलमकार) बन जाए और ''शीम-मीम'' की नक्काशी में अपना सारा हुनर लगा दे। ... न जाने किस अनाड़ी मुल्ला ने उसका नाम गरीबुल्ला रख दिया? अजी, उसका नाम तो अमीरुल्ला होना चाहिए था।''[५२] क्योंकि माँ और बीबी दोनों की मुहब्बत से वह मालामाल था। वह अपने को बहुत भाग्यशाली समझ रहा था। परन्तु भाग्य का रोलर उसके जीवन पर कुछ ऐसे फिर गया कि उसके सारे सपने चकनाचूर हो

गये। पहले उसकी बीबी जन्नतशीन हो गई और उसके बाद उसके गम में अम्मीजान भी खुदा की प्यारी हो गई। गरीबुल्ला के जीने का मकसद ही मानो खत्म हो गया। वह इन आघातों को बरदाश्त नहीं कर पाया और किसी प्रकार गम गलत करने के लिए सपनों की माया-नगरी बम्बई चला आया।

बम्बई में आकर वह फटेहाल फुटपाथों की फटीचर ज़िन्दगी जी रहा था। कलईगिर कारीगर गरीबुल्ला "स्टैनलेस-स्टील" की नगरी बम्बई में आकर अक्सर कुलीगिरी करके अपना पेट पालता है। यहाँ पर गरीबुल्ला की कहानी के माध्यम से लेखक ने बम्बई की वैभव-विलास वाली ज़िन्दगी और फुटपाथ और झुंगी-झोंपड़ियों की ज़िन्दगी का लेखा-जोखा भी दिया है।

इस कहानी में गरीबुल्ला के माध्यम से लेखक ने पेट की आग और पेढू की आग की बेबसी और इन दोनों में गरीबुल्ला के बेहद गरीब नसीब की दास्तान को अपनी विशिष्ट शैली में कहा है।

इसमें प्रकारान्तर से लेखक ने पंजाबी नन्दू हलवाई किस प्रकार बम्बई के पुराने घसीटा हलवाई को व्यवसाय में मात देता है। प्रचारतंत्र की मार क्या होती है, उसे भी लेखक यहाँ उकेरता है : "शुरू-शुरू में बम्बई के ग्रान्टरोड पर अपन पहली दुकान खोलने के दौरान नन्दू हलवाई को बम्बई के सबसे पुराने और सबसे प्रसिद्ध घसीटा हलवाई करांचीवाला से टक्कर लेनी पड़ी थी। मगर, जहाँ नन्दू हलवाई ने बम्बई की फिल्मिस्तानी जनता की नाड़ी टटोलकर, मिठाइयों की सतरंगी और डिब्बों को खारी बावली देहली के "गर्ग एण्ड कंपनी" के कोकशास्त्र और "रति-रहस्य" पुस्तकों के मुख पृष्ठ की तरह कलापूर्ण बनाने में शक्ति लगाई, वहाँ घसीटा हलवाई अपनी "शुद्ध घी-मावे की मिठाई" के भरोसे में रह गया और नन्दू हलवाई की टक्कर में बुरी तरह घसीटा गया।"[५३] इस प्रकार नन्दू हलवाई की व्यावसायिक-सफलता की नींव में उसकी अक्लमंदी की ईटें लगी हुई थीं। मिठाई के डिब्बों और पैकिंग के शानदार कागजों पर वह अमरिका-इंग्लैण्ड की "न्यूड-मोडलों" के चित्र छपवाता था। मिठाई से ज्यादा

उसके डिब्बे और रैपर्स बिकते थे। लेखक अपनी व्यंग्यात्मक शैली में लिखता है -

"शेष डिब्बों पर प्रसिद्ध मराठा चित्रकार सुलगांवकर के राधा-कृष्ण, सीता-राम और शिव-पार्वती के युगल-चित्र छपाए जाते थे, जिनमें राधा, सीता और पार्वती आदि ईश्वर-अर्द्धांगिनियों को अधनंगी दिखाया गया था और जिनमें शरीर के आसपास की चित्रकला अमेरिका-इंग्लैण्ड के "न्यूड-माडलों" की मांसल नक्काशी को भी मात करती थीं।"[५४]

कुलीगिरी करके गरीबुल्ला पेट तो किसी तरह भर लेता था, परंतु एक दिन उसे नन्दू हलवाई की मिठाई खाने की इच्छा होती है और गरीबुल्ला मांग बैठता है - "सेठ थोड़ी-सी मिठाई मिल जाए गरीब को।" गल्लेदार ने उसे कोई भिखारी समझा और नौकर चोखे को बुलाकर कहा - "इस डिब्बे में दिन का बचा पराठा-शाग पड़ा है मेरा, डाल दे उस भिखारी के झोले में। जरा डिब्बा दूर ही रखियो।" पर गरीबुल्ला इतना बेगैरत भी नहीं है कि तमन्ना करे मिठाई की और कोई उसे थमा दे रोटी-सब्जी। नफरत भरी निगाह से टिफिन को देखते हुए वह कहता है - "रखे रहो सेठ, अपना सब्जी पराठा, मुझे नहीं चाहिए। यों ही सलाम करने खड़ा हो गया था।"[५५]

यों तो गरीबुल्ला शमा बी को जी-जान से चाहता था और उसी के गम में तो भागा था मुरादबाद से। परन्तु एक दिन पेढू की आग जोर मारती है और वह सोचता है कि किसी बाई से इश्क किया जाए। मरीन ड्राइव, चर्चगेट की तरफ कैफे-परेड में सड़क के किनारे बेन्चें लगी हुई हैं, जहाँ शाम को ठंडी हवा लेने वाले चक्कर काटते हैं। गरीबुल्ला ने सुन रखा था कि वहाँ "हवा से भी तेज फरफराने वाली लड़कियाँ और चक्करदार रोमांस लड़ाने वाली विवाहिता प्रौढ़ाएँ अधिक आती हैं। लड़कियाँ ऐसे बूढ़ों को ढूंढती हैं, जो अपनी विशुद्धवासना की तृप्ति के लिए उन्हें सिनेमा दिखा सकें, बड़े-बड़े होटलों में लंच खिला सकें। ....और प्रौढ़ाएँ ऐसे जवानों को ढूंढती हैं, जो जेब से कड़के मगर जिस्म के तगड़े हों और चन्द रूपयों के लिए उनके साथ कहीं भी जा सकें।"[५६]

गरीबुल्ला को एक पारसी महिला दिखती है। वह उसके लिए कोशिश करता है। "क्या है बाबा, क्या मांगता है?" पारसी महिला मीठे आवाज में पूछती है। गरीबुल्ला को लगता है कि बाई शायद गरजवाली है। वह पूछता है ... "कहाँ चलना होगा।" परंतु पारसी महिला एक अठन्नी देते हुए कहती है - "जिस होटल में भी तुम्हारा मरजी पड़े, बाबा पेट भर खाना खाओ और हमारा फिरोजशा साहब के लिए दुआ करो।"[५७] मुझे कुछ नहीं चाहिए, मेम साहब के ऐसा कहते हुए गरीबुल्ला खामोशी से आगे बढ़ जाता है, मगर "एक बुरी तरह से कटा हुआ हंसी का हल्का-सा टुकड़ा उसके कांपते हुए होंठों से नीचे लटक गया - "गरीबुल्ला, न जाने किस बेवकूफ मुल्ला ने तेरा यह नाम रखा ! ... अबे, तेरा नाम तो गरीबुल्ला ....याने गरीब उल्लू ...होना चाहिए था।"[५८]

(८) दैट माय फादर बालजी : ---

यह कहानी एबसर्ड शैली में लिखी गयी है। उसमें एक पागल का प्रलाप है, परन्तु इस प्रलाप के टुकडों को जोड़ने से उसमें से एक दर्द भरी कहानी का जन्म होता है। इस कहानी में बम्बई के सेठों की ऐयाशी और उस ऐयाशी पर पलने वाली औरतों का यथार्थ शैली में चित्रण हुआ है। इसमें ऐसे ही एक सेठ बालजी है जिसको वह पागल अपना फादर कहता है। बालजी सेठ अपनी दौलत की ताकत पर अनेक स्त्रियों के साथ ऐश करता है। उसकी पत्नी गुजराती है। सेठ भी गुजराती है। पत्नी बड़ौदा जिले के रत्तौड़ा गाँव की है। पत्नी के अलावा "स्पेर-व्हील"रखने का सेठ को शौक है। ऐसे "स्पेर-व्हीलों में आफिस की टाइपिस्ट मैडम क्रिस्ताना है। मैडम क्रिस्ताना के अलावा उसकी बहन मिस निवेदा को भी सेठ ने फांस रखा है और बम्बई के भुलेश्वर में एक फ्लेट उसे दिलवाया है।

कथा-नायक पागल की माँ एक मराठी घाटन है। वह महाराष्ट्र के सतारा जिले के धिंगारी गाँव की थी और बम्बई स्टोक-एक्सचेन्ज के

बिल्डिंग के नीचे मौसंबी-संतरे आदि बेचा करती थी। उस समय वह बहुत सुंदर थी और उसकी जवानी सातवें आसमान को चूमती थी। फिल्म एक्ट्रस शान्ता आप्टे की बहन हो ऐसा लोगों को भ्रम हो जाता था। सुरा और सुंदरी बालजी सेठ का शौक था। उनकी नजर इस गंगाबाई पर पड़ती है और उनका दिल इस पर आ जाता है। वे उसे वहाँ से उठाकर एपोलो स्ट्रीट की सातवीं मंजिल पर बिठा देते हैं। वहीं पर कथा-नायक पागल का जन्म होता है। गंगाबाई भी बालजी सेठ की और रखैलों की तरह रहती तो शायद उसका बुरा हश्र न होता। परंतु गंगाबाई तो अपने को बालजी सेठ की ब्याहता ही समझती थी और अपने बेटे के हक की मांग करती थी। यथा - ''जेव्हां पर्यन्त मला माझा मुलगाचा हक्क ना हीं मिलेल, तेव्हां पर्यन्त मी तुमचा आश्रय सोडणार नहीं।''[५९] अर्थात् जब तक मुझे मेरा और मेरे बच्चे का हक नहीं मिलेगा, तब तक मैं तुम्हारा आश्रय छोडूंगी नहीं। पर बालजी सेठ उसे अपनी इकसठवीं सालगिरह पर आमंत्रित करता है और वहाँ कुछ ऐसा घटित होता है कि बच्चा लल्लन-लालजी पागल हो जाता है और गंगाबाई भी पागल-सी होकर फ्लोरा-फाउण्टन के पास भीख मांगने लगती है। पागल के ही शब्दों में - ''देट माय फादर बालजी- क्रिस्ताना मैडम- अमृत पोपट के साथ अपनी इकसठवीं वर्षगांठ पर हमें भी न्यौता...धेट माय फादर बालजी... फाउण्डर आफ पापड़ी एण्ड भावनगरी गांठिया इन बाम्बे। इनवाइटेड अस...दैट अमृत पोपट....दैट मैडम क्रिस्ताना .....उस दिन वहाँ वह जशन मनाया गया....हमारे लिए एक-से-एक बढ़िया पकवान...डिनर और ड्रिंक .... दैन व्हाट हेपण्ड? व्हाट हेपण्ड दैन? हेपण्ड दैन व्हाट...आई एक मैड?....यू आर मैड...दैड मिस्टर बालजी....''[६०]

इस कहानी के अन्त में लेखक ने एक टिप्पणी लगाई हैं जिसमें कहा गया है - ''एक विक्षिप्त की आत्म-प्रलाप कथा, जो भाई सुरेन्द्रकुमार पाल के साथ चर्चगेट से बांदरा जाते समय चलती ट्रेन में सुनी थी।''[६१]

(९) पत्थर : ---

"पत्थर" कहानी की गफूरन एक बहुत ही नेकदिल और वफादार औरत है। शैलेश मटियानी की ही एक और कहानी "महाभोज" की शिवरत्ती भी इसी प्रकार की औरत है। गफूरन का शौहर रमजानी नम्बरी कामचोर और निखट्टू है। प्रेमचंद की "कफ़न" कहानी के माधव और घीसू की तरह यह भी कुछ करता नही है, परंतु गफूरन बड़ी मेहनत-मजदूरी करके रमजानी को खिलाती-पिलाती है। इतना ही नहीं उसके सारे शौक पूरे करती है - पान-सिगरेट, शराब और मटन-बिरयानी। गफूरन हमेशा खुदा से दुआ करती है - "या अल्ला रसूल, उन्हें राजी-खुशी रखना।"[६२]

रमजानी मुहल्ले-टोले में ऐंठता इतरात फिरता था - "यार अहमदिया, यार करीमुल्ला, बेचे जाओ चश्मे, बटन, बैलून और आलू की टिकिया, मिर्च पकोड़े और उठाए जाओ बीबी-बच्चों के नाज़-नखरे, मगर बख्त पर कोई चीज न मिलते ही बीबी खसम मानने से तौबा न कर जाए , तो कहना, पिपरमेंट, चौकलेट या स्कूल की फीस न मिलने पर बेटे अब्बा कबूल करें, तो कहना ... यारो, ये जो तुम्हारी बीबियां हैं न, साल-दर-साल बच्चे दे सकती हैं, पर दिल को सकून नहीं दे सकतीं।"[६३]

रमजानी की ऐसी बातों से आरिज आकर एक दिन अहमदिया टोंचा मार ही देता है - "अबे, बीबी से बेटा पैदा करना कोई पान चबाकर थूक देना नहीं है ! यह काम मरदों का है ! खैर तू बीबी और मरदों के उसूलों को क्या समझेगा ?"[६४] और यह बात रमजानी को अखर जाती है। उसके गले का रूमाल फांसी का फंदा बन जाता है। उसके हरामखोर स्वभाव के कारण रमजानी बच्चा नहीं चाहता था, पर रमजानी को टोंचा उसे लग जाता है और वह जी-जान से गफूरन को प्यार करने लगता है।

कुछ ही दिनों में रमजानी को पता चलता है कि उसकी बीबी अब कपड़ों से नहीं होती तो वह सैफू मिस्त्री को पालने का आर्डर दे देता है और मदीना चाची को भी कह देता है कि वह गफूरन का बच्चा जनवाने को

तैयार रहे और बच्चे के लिए एक गरम टोपी भी बना दे। पर पेट से हो जाने के कारण जब गफूरन मेहनत-मजदूरी के योग्य न रही, तब मटन-बिरयानी और सिगरेट तो क्या दाल-रोटी और बड़ी के भी ''वांधे'' पड़ने लगे और रमजानी तब कुछ ऐसा महसूस करने लगा कि ''उसने मरदानगी नहीं, कोई बहुत बड़ी बेवकूफी कर दी है और उसका फल है कि करी भुगतनी पड़ रही है।''[६५]

अतः वह अहमदिया को कोसने लगता है। गफूरन को बेटा होता है, पर रमजानी को उसकी कोई खुशी नहीं होती। अतः बेमना से वह उसका नाम रख लेता है - पत्थर।

रमजानी के सुख के दिन गायब हो गये। अब गफूरन की बीबी उतनी मेहनत-मशक्कत नहीं कर सकती थी। खाने के भी लाले पड़ने लगे। बच्चा भी बगैर दूध-रोटी के भूखों मरने लगा। रमजानी के पड़ोस में कादरमियां रहते थे। कादर मिया लंगड़े थे और भीख मांगने का काम करते थे। वे सोचते हैं कि ऐसे में अगर कोई बच्चा मिल जाय तो उनकी आमदनी बढ़ सकती है। वे गफूरन के आगे प्रस्ताव रखते हैं कि यदि वह अपना बच्चा भीख मांगने के लिए देती है तो वे उसे रोज-के-रोज सवा रूपये देंगे। गफूरन पहले तो हिचकती है, पर बाद में सोचती है कि बच्चा भूखों मर जायेगा, उससे तो यह अच्छा है। कादरमिंया हररोज बच्चे को ले जाते थे और शाम को छोड़ जाते थे। कादरमियां अपनी बात के पक्के थे। एक रूपया रमजानी को देते और चवन्नी गफूरन को कि इसे बचाकर रखे तो कभी आड़े दिनों में पैसे काम आ सकते हैं। रमजानी के आगे एक ही रूपया तय हुआ था। आज की महंगाई के हिसाब से एक रूपया तो कुछ भी नहीं है, पर याद रहे यह सन् १९५८ के पहले की कहानी है। उन दिनों एक रूपया भी गरीबों के लिए तो बड़ी रकम हुआ करती थी।

इस प्रकार जब बच्चे से एक रूपया मिलने लगा तो रमजानी का लोभ और भी जाग्रत हुआ। उसने सोचा कि कादरमियां की जगह यदि गफूरन भीख मांगे तो ज्यादा पैसे मिल सकते हैं। गफूरन को यह पसंद नहीं था। पर गफूरन का जो स्वभाव था। ''गफूरन खुदा से लड़ लेगी, पर अपने

शोहर से न लड़ेगी।''[६६] परंतु भीख मांगने का अभ्यास न होने के कारण कुछ आने भी नहीं जुट पाते थे। तब एक दिन रमजानी कहता है - ''खुदा के बन्दे रह कहां गये हैं, बेगम ? ...खामोश बच्चे को तो मां भी दूध नहीं पिलाती है। कहती कि इस बच्चे का बाप मर गया है।''[६७] यह सुनना था कि गफूरन के कसकर एक तमाचा रमजानी को जड़ दिया। रमजानी गम के आंसू पीकर रह गया।

दूसरे दिन से रमजानी खुद बच्चे को लेकर निकल पड़ता है बम्बई की लोकल ट्रेनों में भीख मांगने। एक दिन रमजाने के बच्चे ने एक दूसरे बच्चे का बैलून फोड़ दिया। इस पर बच्चे के बाप ने रमजानी के बच्चे को थप्पड़ मारते हुए कहा - ''अबे, ओ भिखारी, जरा बच्चे को तो संभाल के पकड़। एक-एक नये पैसे की भीख मांगेगा दरिद्दर, हमारे बच्चे का एक आने का बैलून फोड़ दिया।''[६८]

''रमजानी ने बिना इधर-उधर देखे, बच्चे को थप्पड़ मारने वाले आदमी के मुँह पर तड़ातड़ चार तमाचे जड़ दिये - ''मेरे बेटे पर हाथ उठाता है? तोड़ डालूंगा तेरे हाथ-पांव ! भिखारी होगा, तेरा बाप !'' और अपनी बीड़ियो के लिए बचायी हुई अन्नी उसके मुँह पर मारकर, अगले स्टेशन पर उतर गया।''[६९]

इस एक घटना ने रमजानी के जीवन को बदल दिया। वह मिल में नौकरी करने लगा। गफूरन अपने खाविन्द को जी-जान से प्यार करने लगी। प्रेमचंद की ''मैकू'' तथा प्रसाद की ''मधुआ'' की भांति यह भी एक हृदय-परिवर्तन की कहानी है। महीने के बाद मिल की ड्यूटी से छूटकर रमजानी घर लौटा तो उसके हाथ में टाफी का डिब्बा था। इस प्रकार इस ''पत्थर'' ने एक ''पत्थरदिल'' शैतान को इन्सान बना दिया।

(१०) फर्क, बस इतना है : ---

प्रस्तुत कहानी ''फर्क, बस इतना है'' में रग्घू और सद्दू नामक दो मित्रों की कहानी है। वे दोनों अनाथ हैं। गाँव से भागकर बम्बई आये थे

और ''पारिजात'' में भाखरिया सेठ के यहाँ रामा की नौकरी करते थे। रग्घू कुछ सीधा-सादा और सहनशील स्वभाव का है और सद्दू कुछ विद्रोही स्वभाव का और मनमौजी किस्म का। अतः एक दिन भाखरिया सेठ उसे निकाल देते हैं। कुछ दिन बाद रग्घू भी ''पारिजात'' छोड़कर ''मृणाल'' में आ जाता है। यहाँ की मालकिन थोड़ी उदार है।

एक दिन अचानक सद्दू बाबाजी के भेष में मिलता है - ''अलख निरंजन.. अलख निरंजन.... अलख... न देखने की हविस, न पाने की ललक ! ... हरी...सब भली करी ! न मौज न मातम, न खुश की न तरी ! शम्भो कैलाश-पति ! बाप करे दुकानदारी, बेटा बने लखपती।''[७०]

रग्घू सेठानी के कहने से जब उसे एकन्नी देने जाता है तब वह सद्दू को पहचान लेता है। सद्दू उसे कहता है - ''अबे ! रानीबाग के लंगूर की तरह क्या देख रहा है? आज रात को गिरगाम वाले भीखू भैया की गद्दी पर आ जाना।''[७१] बड़ी रात गए सारे काम निबटाकर रग्घू भीखूभाई की गद्दी पर पहुँचता है। ''भीखूभाई की गद्दी क्या थी, आवारा-मुफलिस लोगों का अड्डा था, जहाँ चरस की चिलम से लेकर, दारू की बोतल तक चलती थी। इस गद्दी पर आनेवाला हरकोई मस्तमौला होता था।''[७२]

प्रस्तुत कहानी में सद्दू के चरित्र द्वारा बम्बई के उच्चवर्गीय लोगों की पोलपट्टी खोली गई है। बम्बई में कैसे-कैसे गोरखधंधे चलते हैं, वह भी यहाँ स्पष्ट हुआ है। बम्बई में बड़े-बड़े सेठों के यहाँ जो नौकर-रामा लोग होते हैं उनके जीवन की त्रासदी को मटियानीजी ने ''कबूतर खाना'' के कबूतर जैसा है। सद्दू आजाद पंछी है। एक स्थान पर वह सेठों की नौकरी के बारे में कहता है - ''यार रग्घू ! बरतन घिसते-घिसते हाथों में गड्ढे पड़ गये, पर सेठानी की फिसफिस और बेबी लोगों की ''किसमिसों'' से पिण्ड नहीं छूटता। जहाँ जाओ, प्यारो घर -घर मिट्टी के चूल्हे हैं। इन कोठियों की चाकरी में सेठानियों की चूहेदानी से निकलो तो सेठों के पिंजरे में और इन दोनों से फुर्सत मिले, तो बेबी लोगों के कबूतरखाने

में !.... मैं तो तंग आ गया हूँ, इस चख-चख की चाकरी से ।''[73] अन्यत्र वही सद्दे कहता है - ''और इन बंगलों की चाकरी में सबसे बड़ी मुसीबत मुहब्बत की है ।''[74] यहाँ मुहब्बत से तात्पर्य सेठ-सेठानियाँ और ''बेबी लोगों'' की यौन-तृष्टि से है । यह काम भी इन रामाओं को करना पड़ता है ।

कहानी में सद्दू के चार रूप मिलते हैं । पहले ''पारिजात''में रामा, फिर कुलीगिरी, उसके बाद भिखारी और अंत में बाबाजी । इसके बाद किसी ''मारूति-मंदिर'' में पूजारी हो जाने की उसकी ''प्लानिंग'' है - ''अभी-अभी बालकिशन कह रहा था, कि बगल के ''मारूति-मंदिर का बाबा किसीके साथ उड़ गया है । सो, अब मैं वहाँ अड्डा जमाने की सोच रहा हूँ । बिना कहीं भरमे-भटके चोरखी इनकम हो जायगी ।''[75]

इसमें सद्दू जब भी अपना काम बदलता है, पहले वाले काम से यह काम किन मानों में बेहतर है, उसमें क्या फर्क है, वह बताता है । जब सेठ की नौकरी छोड़कर कुलीगिरी करता है, तब वह कहता है - ''भाखरिया सेठ के यहाँ तो गुड़वाली ढाल-सब्जी खाते-खाते जी पक गया था । यहाँ मटन-चाप और आमलेट के नीचे बात ही नहीं करता । ... जब मन हुआ सिनेमा चले गये । यह मुसीबत नहीं कि सेठ लोगों का कुनबा मेट्रो गया है, तो तब अपनी नींद का गला दबाते रहो रात के एक बजे तक । और प्यारे सवाल तो सिर्फ रोटी का है । सो गुजर यहाँ। भी हो जाती है । फर्क, बस इतना है कि वहाँ गुलामी थी, यहाँ आजादी है, वहाँ मजबूरियाँ थीं, यहाँ बस मजे-ही-मजे हैं ।''[76]

उसके बाद जब वह भिखारी हो जाता है तब कहता है- ''सुन प्यारे ! अपन तो बिना जंजीर का बुलडोग है, जिधर हड्डी देखी, उधर ही लपके । सच पूछो, तो कुलीगिरी में भी कुछ मजा नहीं । ... लाइसेंस को कहते हैं मेरे बेटे ! अजीब दुनिया है यार, कि गट्टे-पुट्ठे अपने तोड़ो, ऊपर से लाल वर्दी के टैक्स दो और बाबुओं की बेगारी करो । ... अब तू देख रहा है न ? बस, घड़ी-दो-घड़ी यह तमाशा कर लिया, कभी यहाँ, कभी वहाँ । हींग-फिटकरी के नाम पर चार आने का सिरका महीने-भर चलता

है। ... यों भी सवाल तो सिर्फ रोटी का है न प्यारे ! सो तब भी मिल जाती थी और अब भी मिल जाती है। भगवान भूखा तो नहीं मारता किसी को। कन-मन का हिसाब यों ही नहीं हो जाता ! फर्क, बस इतना है कि गट्टे-पुट्ठों की खैर नहीं थी, अब बिना करी के सारे खर्च निकल आते हैं।''[७७]

और आखिर में जब वह बाबाजी बन जाता है तब कहता है - ''भीख मांगने में भी सौ-सौ लानतें, सबसे बड़ी मुसीबत यह कि कालेज की उन छोकरियों को भी ''माई'' कहना पड़ता था, जिन्हें देखकर हम सीटियाँ बजाया करते थे, क्यों याद है न बंगले की चाकरी के दिनों की बातें ? ... लेकिन अब मजे में हूँ यार ! धर्म अभी है हिन्दुस्तान में। चार फेरे लगा लेता हूँ, तो चैन की छानता हूँ। पोस्ट-आफिस में भी अब कुछ रूपये जमा कर लिया हैं। ... अच्छी इनकम हो रही है आजकल। गुजर पहले भी होती थी, और अब भी हो रही है। फर्क, बस इतना है कि एक दिन भाखरिया सेठ को ''भाई साहब'' कह बैठा, तो गालियाँ देकर उसने मुझे निकाल दिया था, कल उसी को ''बेटा'' कहा तो ''बाबाजी'' कहकर उसने हाथ जोड़े। साधु बनने में यही मजा है प्यारे ! जो माई-बाप कहने पर मुँह बिचकाते थे, अब बेटा कहने पर ''बाबाजी नमो-नारायण ! कहते हैं।''[७८]

(११) बिट्ठल : ---

''फर्क, बस इतना है'' में जो बातें सद्दू के मुँह से संकेतात्मक ढंग से कहलवायी हैं, ''बिट्ठल'' में वे बातें खुल्ले-नग्न ढंग से कही गयी हैं। इन संदर्भ में मटियानीजी ने ''मेरी तैंतीस कहानियाँ'' की भूमिका में यथार्थतः कहा है- ''परंतु, मैं यह कहना चाहता हूँ कि मेरे लेखन में जो तथाकथित उग्रता, अभद्रता और अश्लीलता है, वह पूंजीवादी व्यवस्था के अन्तर्गत होने वाले शोषण के तरीकों से कहीं बहुत अधिक मर्यादित, शिष्ट

और श्लील है। हिन्दी के अन्य लेखकों की तुलना में यदि मेरी रचनाओं में अधिक आक्रोश और बौखलाहट है, तो उसका एक-मात्र कारण यह है कि मैंने आर्थिक और नैतिक व्यवस्थाओं के दुष्परिणामों को देखा-सुना ही नहीं, प्रत्युत सीधे स्वयं भोगा भी है।''[७९]

बम्बई के हजारों लावारिसों की तरह बिट्ठल की ज़िन्दगी भी फुटपाथ से शुरू हुई थी। बूढ़ा ईरानी कहता है कि बिट्ठल की माँ करसनदास जवेरी की बीबी सोमावती है और उसका बाप गेना पठान है। वह बताता है कि जवानी के दिनों में सोमावती रुकमाबाई के यहाँ पिल हाउस में आती थी, क्योंकि ''करसनदास के पास लाखों के जवाहिरात थे, पर वे मोती न थे, जो एक पत्नी अपने पति से चाहती है। इन मोतियों की माला गूंथने, सोमावती पिल हाउस पर गेना पठान के पास आती थी।''[८०]

पर बिट्ठल खुदको सतारा के नारायण बुड्ढे की औलाद बताता है, जिसने उसका नाम अपने कुलदेवता के नाम पर रखा था। छः-सात साल की उम्र में बिट्ठल बू-पालिश करने लग गया। साथ ही वह फाकलैण्ड रोड (उत्तर में) दक्षिण में गोलपीठा, पूरब में कमाठीपुरा और पश्चिम में त्रिभुवन रोड पर जो ''उर्वशी-कर्म'' के अड्डे चलते थे वहाँ ग्राहकों को ले जाने का काम भी करता था। जैसे जगदगुरु शंकराचार्य ने वैदिक धर्म की स्थापना के लिए चार दिशाएँ, चार धाम रख छोड़े हैं, वैसे ही बम्बई में इस ''उर्वशी-कर्म'' के लिए ऊपर के चार धाम हैं। बिट्ठल अपनी छोटी-सी उम्र में इन चारों धामों की यात्रा कर चुका है। ''जसोदाबाई की सातवीं दफा अस्पताल से लौटी कुलसुम को वह ''नई चिड़िया'' बताया करता, जिसके बदले में जसोदाबाई उसे पंढ़रपुरी पान खिलाया करती-पीला पत्ता- काला कांडी।''[८१]

परंतु कुछ ही समय में यह ''पण्डागिरी'' छोड़कर बिट्ठल चम्पीमालिश करने लग जाता है। ''चम्पीमालिश, चम्पी बोलाई।'' की, बिट्ठल की कांसे के थाल-सी गूंजती आवाज सोनापुर के स्मशान से लेकर क्वींस रोड़ के कब्रिस्तान तक सुनाई पड़ती थी। बिट्ठल की इस खनकती आवाज़ पर रीझकर रुस्तमजी सेठ उसे अपने सिनेमा-हाल पर ''बूम'' मारनेवाले

"छोकरे"की नौकरी देते हैं। इस कला में भी बिट्ठल अपनी "प्रतिभा"(?) के जौहर दिखाता है। बूम मारते-मारते बिट्ठल सिने-दर्शकों के कान में मंत्र फूंकता - "अन्दर तो और भी खुल्ला बताया है।"[८२] इस पर कोई मनचला पूछ बैठता- "खुल्ला क्या बताया है रे? ... अबी अमेरे कु बोलने को भी शरम ... बिट्ठल एक शायराना स्टाइल के साथ शरमा जाता - "पिक्चर तो बस विलायत वाले बनाते हैं। टार्जन की माशूका तो बिना घाघरा पहने ही नहाती है।"[८३]

कुछ दिनों के बाद रुस्तम सेठ को गठिया-वात पकड़ लेता है, और तब बिट्ठल की ड्यूटी सेठ के बंगले पर चम्पी-मालिश के लिए लग जाती है। रात को मालिश करवाते समय रुस्तमजी सेठ "फकीर जितनी लंगोटी भी शरीर पर नहीं रखते थे।" एक दिन सेठ जब "मुसाफिर-खाना" देखने गये थे तो सेठानी बिट्ठल पर "दांत" गड़ा लेती है। वह कहती है - "बिठुवा! इधर कूं आके, एक कलाक मेरे साथ कूं बैठना रे!"[८४] बिट्ठल सेठानी से पूछता है कि सेठ को क्या तकलीफ है, तो सेठानी कहती है - "तकलीफ-वकलीफ कुछ नहीं है ... अमेरे से बचने की तरकीब है। ... सेठ तो "पावली कम"(हिजड़ा) हो गया है।"[८५]

इस प्रकार बिट्ठल सेठ-सेठानी दोनों की तबियत सहलाता है। सेठानी बिट्ठल से यह कहकर कि वह थोड़ा कमजोर हो गया है, रोज दो अण्डे खिलाती है। ऐसे में एक दिन सेठ की लड़की रुस्तमा उसे पकड़ लेती है। बिट्ठल कुछ हिचकता है, तब वह उससे कहती है - "पिछले बरस भी पापाजी रत्नागिरी से एक रामा लेके आये थे। वह पापाजी, बड़ी बाई और मेरे को - तीनों को संभालता था।"[८६]

बिट्ठल रुस्तमा को अपनी छाती से लगाकर उसे "इंग्लिश-स्टाइल" का बोसा दे ही रहा था कि उसके सिर पर रुस्तम सेठ की लाठी पड़ती है - "साला हलकट ... घाटी साला ... हमेरे ही घर में नौकरी करके, हमेरी ही दीकरी को ... साला, हलकट घाटी ... बेइमान।"[८७]

कहानी का अंत इस प्रकार है - "एक झटके के साथ, रुस्तमजी के

हाथ से लाठी छीनकर बिट्ठल बोला - ''हमारा इमान-धरम क्या सेठ। फुटपाली पर पैदा होत हैं ... फुटपाली पर मर जाते हैं। इमान-धरमावाले तो आप लोग हैं सेठ। पर मैं पूछता हूँ, जभी मैं तुमेरी नंगी ... की चम्पी करता रहा रात-रात भर, तभी कुछ नहीं बोला ? फिर एक महीने तक तुमेरी राजीमंदी से सेठानी का दिल बहलाता रहा, तुभी तुम कुछ नहीं बोला ? येच तुमेरा इमान-धरम है, तो थू है तुमेरे इमान-धरम पर, सेठ !'' ... रुस्तमा का ब्लाउज ठीक करते हुए रुस्तमजी बोले - ''तो क्या साला, बाई (मां) को और दीकरी (बेटी) को एक सरीखा समझे हैं ?'' बिट्ठल तब तक नीचे उतर चुका था।''[८८]

इस तरह जैसे जयशंकर प्रसाद ने अपने ''कंकाल'' नामक उपन्यास में तथाकथित उच्च-वर्गीय अभिजात वर्ग की वर्णशंकरी सृष्टि की है, ठीक वैसे ही यहाँ मटियानीजी ने बम्बई के जीवन के इस आयाम को निर्वस्त्रित किया है। ''जिसकी जरूरत नहीं थी'' कहानी का कथ्य भी लगभग इसी प्रकार का है। यहाँ बिट्ठल है, वहाँ नायक के रूप में शिशिर है।

(१२) चील : ---

''चील'' एक भयंकर दरिद्रता और गरीबी की कहानी है। उसका परिवेश इलाहाबाद का हे। कहानी रामखेलावन नामक एक बच्चा और उसकी माँ सतनारायण को केन्द्र में रखकर चली है। राम खेलावन जब आठ-नौ साल का होगा उस समय उसका बाप मर गया था और चार-पांच साल का था तब उसकी दादी मर गयी थी। रामखेलावन की अच्छी स्मृतियों में मां-दादी की स्मृतियां है। बाप तो शराबी-कबाबी और जुआरी था और अक्सर उसकी माँ को बहुत बुरी तरह से मारता रहता था। पर एक बात रामखेलावन को याद है कि उसका बाप चाहे कैसा भी था, चाहे कितने भी नशे में होता था, उसके लिए कोई-न-कोई चीज जरूर ले आता था। नशे में घूत तब वह लुढ़क जाता था तब दादी उसकी जेबें

टटोलती थीं और यदि कुछ पैसे हुए तो उन्हें अपनी कमर में खोंसती, बिस्कुट या मीठी गोलियों की पुड़िया निकालकर खिलावन को दे देती थीं।'' उसकी जेब में मीठी गोलियों, या बिस्कुट या केले या कुछ भी न होना उसका नशे में भी न होना हुआ करता था।''[८९]

कहानी में ''चील'' का प्रतीकात्मक उपयोग हुआ है। एक बार खिलावन के पिता ने कर्नलगंल के रशीदमियां के यहाँ से आधा किलो गोश्त खरीदकर उसे थमा दिया था कि वह उसे घर ले जाए और खुद दारू की बोतल का जुगाड़ करने कहीं निकल गया था। खिलावन घर जा रहा था कि एक चील उस पर झपटती है और गोश्त की पुटली उससे छीनकर ले जाती है। कुछ बोटियां जमीन पर बिखर जाती हैं जिन पर एक कुत्ता झपटता है। जब उसका बाप खाने पर बैठता है तब जस्ते की थाली में गोश्त के बदल आलू के टुकडों को देखकर खूब आग-बबूला हो उठता है। कारण जानने पर वह उसे अपने पास बुलाता है और कनपटी पर झापड़ रशीद कर देता है।

पिता की इन बातों के अलावा खिलावन को यह याद पड़ता है कि उसके बाप ने कुछ दिनों के लिए उसे म्युनिसिपल प्राइमरी स्कूल भी भेजा था, जहाँ से अपनी अपनी काली तख्ती लिए चुपचाप भाग आता था। परन्तु यह सिलसिला ज्यादा चला नहीं क्योंकि वह स्वर-व्यंजन तथा बाराखड़ी की त्रिवेणी पार करे उसके पहले उसका बाप मर गया था। ''दादी बाप से पहले मरी थी और मरी से ज्यादा सोयी हुई-सी दिखती थी। डर नहीं लगा था। लेकिन बाप मरा तो, उसका मुँह आगे के तीन दांतों के टूटे होन से, बहुत डरावना लगा था और काफी दिनों तक वह इस देहशत से उबर नहीं पाया कि उसका बाप किसी रात के धुप्प अंधेरे में फिर आएगा और उसकी माँ के ऊपर लेटकर, ठीक उसी मुद्रा में फिर मर जाएगा।''[९०]

शुरू से ही खेलावन का चित्त खाने-पीने की चीजों पर ज्यादा रहा है, कपड़ों पर नहीं। उसकी आँखें जमीन पर रेंगती रहती हैं। बीड़ी-सिगरेट के ठूंठे और कभी-कभार पैसे मिल जाते हैं। एक बार तो उसे अठन्नी

मिल गयी थी, जिसमें से चालीस पैसे की सौ ग्राम जलेबी वह एक साथ खा गया था। यह पिछले वर्ष की बात है। इसके बाद फिर वैसी तृप्ति कभी मिली नहीं। उसे अब भी ठीक-ठीक याद है, जलेबी के दोने को एकान्त में वह वैसी ही सतर्कता से ले गया था, जैसे कोई आवारा कुत्ता हड्डी ले जाता है।''[११]

पिता के मरने बाद खिलावन की माँ सतनारायणी कई घरों में बरतन मांझने, कपड़े धोने ओर झाड़ू लगाने का काम करती थी। फटे-पुराने कपड़ों के अलावा बचा-खुचा खाना और त्यौहारों पर कभी पूरी-मिठाई मिल जाते थे। पर वही माँ बुरी तरह से बीमार है। उसे दस्त और उल्टियां हो रही हैं। तब मां की जगह पर एक दिन वह शुक्लाइन के यहाँ काम पर गया था। बरतन धोते-धोते दो छोटी चम्मचें उसने जांघिये की जेब में डाल ली थीं। परंतु शुक्लाइन इसे पकड़ लेती है। शुक्ला साहब उसे भद्दी गालियां देते हैं। वह किसी तरह वहाँ से भाग आता है। परंतु शुक्लाइन उन दो चम्मचों को लेकर मां के पास पहुँच जाती है। ''उसकी बीमार माँ बार-बार रोती और माफी मांगती रही थी और जिन्दगी में पहली बार उस औरत ने खिलावन को बहुत बुरी तरह गालियां बकी थीं, जिनमें से एक वह भी थी, जिसको वह अपने अस्तित्व से चिपका हुआ पाता है।''[१२]

शुक्लाइन के वास जाते ही, उसने अपनी सम्पूर्ण आक्रामकता में यह प्रश्न माँ की ओर उछाला था - ''तो हम का करी ! भुक्खें मर जाईं ?'' तब माँ ने कहा था - ''मर जाव। मर नहीं सको तो ----''[१३] और तब माँ के मुँह से गंदी गाली निकली थी। उसके बाद माँ ईश्वर को भी गालियाँ देने लगी थीं और इसके बाप को भी। तब खिलावन के मन में भी आया कि वह माँ से कह दे- ''तब तुम्हीं क्यों नहीं मर जाती हो ?''[१४]

लेकिन भागकर वह आश्रम की तरफ निकल आया था। ''यह बात उसने अपने साथ के छोकरों से सुन रखी थी कि आश्रम वाले बाबाजी छोकरों को अपने कमरे में बुलाते हैं और ढेर सारी मिठाई देते हैं। पैसे

भी। वह कल कई बार आश्रम के आस-पास चक्कर काटता रहा था और जब बाबाजी ने बहुत डांटकर उसे भगा दिया, तब जाकर उसे अनुभव हुआ कि वह भी अपने बाप की तरह बदसूरत और दरिद्र हैं और सिर के बल इतने बढ़ चुके हैं कि भुतहा लगता होगा।''[९५]

रामखिलावन अपनी माँ के बारे में सोचता है - ''उसकी माँ सतनरायनी-टाट और बुराटे में लपेटी हुई बर्फ की सिल्ली की तरह, धीरे-धीरे गलती आई हुई एक औरत ! जो कि ऐसे में तुरन्त उसके सिर पर हाथ ले जाती है - वह उसक बारे में सोचने की कोशिश करता है, तो दारू के नशे से चूर पिता याद आने लगते हैं और एक-एक कर मर जानेवाले छै-सात छोट-छोटे बच्चे पिल्लों की तरह जनती वह औरत-सतनरायनी ! शुक्र है, रामखिलावन के अलावा उसमें से कोई भी जीवित नहीं रहा।''[९६]

रामखिलावन फिर माँ के बारे में सोचता है -''माँ किसी तरह उठी हो या पड़ोस की कोई औरत उसक पास आई हो, तो उसने खिलावन के खाने-पीने के लिए कुछ मांगने की कोशिश की हो? इससे पहले कई बार भरपेट भले ही न मिलता रहा हो, लेकिन कभी ऐसा नहीं हुआ कि वह लगातार दो दिन भूखा रह गया हो और माँ ने चिंता नहीं की हो। माँ इतनी क्रूर क्यों हो गई है? कुछ ही दिन पहले की बात है कि वह बीमार माँ के पास बैठा था, तभी उसे बिस्तर पर ही कै हो गई थी। खिलावन माँ से बिलकुल नहीं घिनाता है। हाथ से ही कै पोंछने लगा था, तो माँ फूट-फूट कर रो पड़ी थी और यह कहते हुए उसके ओंठ कांप रहे थे कि - ''तू घबराना मत रे खिलावन ! तनिक खटिया पर से उठें, तो तेरी परवरिश तो बेटवां हम....''[९७]

यह सब सोचते हुए वह आने को ही कि सब्जी मंडीवाले चौराहे की तरफ से उसे ढोलक-मजीरों का शोर सुनाई पड़ा। उसे लगा कि कोई मुर्दा आ रहा है। वह भगवान से प्रार्थना करता है कि कोई बड़ा मुर्दा आया हो, अर्थात् कोई बड़ा आदमी मरा हो, क्योंकि ऐसे समय मुर्दे के ऊपर जो पैसे फेंके जाते है उसे बटोरने वाली भीड़ में वह कई बार शामिल हुआ है। आज भी वह उसी आशा में बच्चों के झुण्ड में शामिल

हो जाता है और उसे एक दश पैसे का सिक्का हाथ भी लगता है। पर उस दश पैसे के सिक्के का दावेदार कल्लन नामक एक दूसरा बच्चा भी था। वह किसी तरह पूरी ताकत लगाकर उस सिक्के को लेकर भागता है, पर तभी कल्लन चिल्लाता है- "जा साले, ले जा। घर पर तेरी अम्मां मरी पड़ी है। साले, तू भी बिखेरेगा पैसे अपनी अम्मां की ल्हाश पर ....?"[९८]

रामखिलावन को लग रहा है - "कोई चील तेजी से झपट्टा मारती हुई आई हैं और उसकी मुट्ठी में बन्द गोश्त के टुकडों को अपने पंजों में दबोज ले गई है।"[९९] आज उस चील ने उसकी माँ को उससे छीन लिया था।

राजेन्द्र यादव ने कहीं ऐसा लिखा स्मरण में आ रहा है कि मटियानी के पास कुछ कहानियाँ ऐसी हैं जिनके बदले में मैं अपना पूरा कृतित्व उनके नाम कर सकता हूँ। यह कहानी भी उन कहानियों में शामिल की जा सकती है।

(१३) प्यास :

"प्यास"कहानी में बम्बई की झोपड़पट्टियों और फुटपाथ की नंगी-दलित-पलित जिन्दगी को रूपायित किया गया है। इसे पढ़कर जगदम्बाप्रसाद दीक्षित कृत "मुर्दाघर" की याद ताजी हो जाती है। दारू, मटका, उठाईगिरी, पाकेमारी, भीख और भीख के तरीके आदि का माहौल इसमें अपने नग्न यथार्थ रूप में उभर आया है। परन्तु जिस प्रकार एमिल जोला नीच-गलीच-मूल्यहीन पात्रों में भी कहीं-कहीं मानवता के दीपों को झिलमिलाता है, ठीक उसी प्रकार प्रस्तुत कहानी में भी ऐसे कुछ प्रसंग हैं। शंकर या शंकरिया फुटपाथ और झोपड़पट्टी पला-बढ़ा एक उठाईगीर पाकेटमार है। एक बार एक पारसी महिला की सोने की चैन तोड़ने के प्रयास में वह पकड़ा जाता है। ग्रांट रोड पुलिस चौकी की पुलिस उसकी खूब धुलाई करती है। पुलिस की मार के कारण उस पर जो बेहोशी छा जाती है , उस बेहोशी के आलम में, उसके विगत जीवन की

कुछ स्मृतियाँ, कुछ प्रसंग , चेतना प्रवाह , शैली के माध्यम से उभर कर आए हैं। उनसे इस कहानी के ताने-बाने तैयार हुए हैं।

इसमें एक पांडुरंग मामा का पात्र है। उम्र उनकी ५८ वर्ष की है। इन ५८ वर्षों में १० साल खुद भीख मांग कर और ३२ साल दूसरों से भीख मंगवाकर मजे से जिंदगी गुजार रहे हैं। उन्होंने भीख को ही अपना व्यवसाय बना लिया है, पर उनका "मैंनेजमेंट पावर" इतना बढ़िया है कि पैसे कई नालियों से बह कर उनके पास आते हैं। अब उन्होंने बीड़ी का एक कारखाना भी खोल दिया है।

ताराबाई शंकरिया का इतिहास बताती है कि एक कश्मीरी सेठ से एक हैदराबादी नौकरानी को बच्चा हुआ था। बाद में उस सेठ ने नौकरानी को निकाल दिया। वह नौकरानी भी मर गई। तारा बाई उसकी मौसी है और भीख मांग-मांगकर उसकी परवरिस कर रही है। नगरपालिका की कचरा उठाने वाली गाड़ी के ड्राइबर न उसे मरिन ड्राइव के फुटपाथ पर पाया था। वहाँ से उसे अनाथ आलय पहुँचाया होगा। पांडुरंग मामा वहाँ से पचास रूपये रोकड़े और मामा के रिश्ते का वास्ता देकर खरीद लाये थे। मामा वह बच्चा कृष्णा बाई को बेच देता है। कृष्णाबाई एक काली-कलूटी विधवा औरत है। उसका पति रामचन्द्रन रेल दुर्घटना में मारा गया था। तबसे वह भीख मांगकर अपना गुजारा करती है , परंतु बच्चे वाली भिखारिनों के मुकाबले में उसे बहुत कम भीख मिलती थी। अतः "उसने पांडुरंग मामा को कह रखा था कि कोई बच्चा उसके हाथ में आए तो पहले उसे ही सौदा कर ले।"[१००]

उन दिनों पांडुरंग मामा ने लगभग पचास बच्चे इस व्यापार में छोड़ रखे थे और घाटकोपर में उसने बीड़ियों का कारखाना खोल लिया था। उस कारखाने की पांडुरंग बिल्डिग भी उसकी अपनी थी। बम्बई में अधिकांश सयाने भिखारी छोकरों और भिखारिनों में "मामा छाप बीड़ी" बहुत बिकती थी। जब अनाथ आलय से मामा शंकरिया को ले आते हैं, तब सबसे पहले वे कृष्णा बाई से बात करते हैं -"बाई, नकद पचास की

रकम और भान्जे का रिश्ता लगा करके इस छोकरे को खरीदा है। सूरत का गोरा और खूबसूरत है। भीख मांगते समय होशियारी से काम लोगी, तो चांदी पिटवा देगा छोकरा। किसी ऊँचे घराने की लक्ष्मी की औलाद मालूम पड़ता है। नामे का सिकन्दर निकलेगा। ... तो बाई जब तक इस छोकरे से बिजनेस करोगी, एक रूपया रोज लूँगा और अगर तुम्हारी किसी लापरवाही या बीमारी से यह मर गया तो तुम्हें पूरे पचास की रकम एक मुश्त मुझे देनी होगी।"[१०१]

इतना सुनते ही कृष्णा बाई ने शंकरिया को मुर्गी के चूजे की तरह हिलाते हुए कहा था-" अय्यो, अय्यो ! आइसा- कइसे होने का रे मामा ? ... फुटपाली और झोंपड़पट्टी का बच्चा लोग ज्यास्ती जिन्दा रह सकता है। बाले तो, यह तो एकदम मस्के की टिकिया का माफिक छोकरा है, ज्यास्ती तकलीफ बर्दाश्त नहीं करेगा। गया बरस हमको भी एक अइससा ही गोरा-चिट्टा छोकरा पैदा होने को था, मगर दूसरेच महीना ऊपर गुजर गया। ... बोले तो, अगर ये छोकरा भी गुजर गया, तो अपने पचास रूपया कहाँ से देने का ?"[१०२]

इसके जवाब में मामा जो कहते हैं उससे इस पलित-दुनिया के मूल्य लिरिया जाते हैं --"तो रैनन दे रे फिर, बाई ! हो गया तुम्हारा धंधा। अरी, कमअकल ! जब तक जिन्दा रहेगा तब तक तो चाँदी ही पिटवायेगा छोकरा तेरे लिए, मगर जिस दिन मर गया, उस दिन अशर्फियां उगल देगा, अशर्फियाँ ! बाई, फकत एक गज लाल कफ़न का कपड़ खरीद करके अपने इस कलेजे के टुकड़े को माहिम के कब्रिस्तान में दफन करने या सोनापुर के स्मशान में फूँकने के लिए भीख मांगते-मांगते तू एक ही दिन में सौ-डेढ़ सौ पीट लेगी। और छोकरे की मिट्टी को इस सर्दी के मौसम में दो-तीन दिनों तक सही-सलामत रखना कोई बड़ी बात नहीं।....और तीन दिनों में तो पूरे बम्बई शहर में फिराई जा सकती है मिट्टी ! देख, बाई ! मेरा नाम भी मामा पांडुरंग है और अट्ठावन बरस में दस बरस खुद भीख मांगकर और बत्तीस बरस औरों से भीख मंगवा-मंगवाकर ही काट दिये हैं। समझी क्या ?जिस समय तू इस कपास के

फूल की माफिक गोरे छोकरे की मिट्टी को गोद में लेकर भीख मांगेगी, तो दस-रत्तली डालडे का डिब्बा चांदी की चिल्लर से भर जाएगा ! गोरे छोकरे की लाश से काले छोकरों की लाशों की बनिस्बत दस गुना ज्यादा नामा इकट्ठा किया जा सकता है। पिछले बरस तेरा गोरा-चिट्टा बेटा मर गया, तो तूने कितना....।''[१०३]

एकाएक कृष्णाबाई की आँखों में अपने मरे हुए बच्चे की आकृति उभर आयी थी और उसने शंकरिया को गोद में ठीक से संभाल लिया था। फिर उसने मामा से कहा था-''अच्छा रे मामा ! अप तुमेरे को दर रोज ऊपर रूपया दने को मंजूर ! मगर अभी छोकरा जिन्दा है, अभी से अइसी बुरी बात काहे को करने का। ''[१०४]

कृष्णाबाई से सौदा करके मामा सीधे शेरे-पंजाब होटल पहुँचा था और पांच दिनों के ''एडवांस'' के पांच रूपयों का तंदूरी मुर्गा उड़ा गया था। फिर नागम्माबाई की झोंपड़ी में उसने दारू पी थी। उसके बाद उसे जोरों की कै हुई थी। तब अचानक उसके मुंह से निकल गया था-''अस्सस्साली, माणस के गोश्त की कमाई मुर्गे के गोश्त में गंवाई !''[१०५] दूसरे ही दिन वह कृष्णाबाई के यहाँ पहुँचा था और उससे कहा था-''बाई, अभी तो यह दूध पीता ही छोकरा है, तेरे गोश्त से इसकी परवरिश नहीं होगी। देख, इसके लिए एक विलायती दूध का डिब्बा खरीद लेना और एक कांच की बोतल। पांच दिन का किराया कल तूने दे दिया है, अगले पांच दिनों का तू मुझे मत देना। समझी बाई?'' [१०६] मामा के इस कथन से ज्ञात होता है कि कहीं बहुत भीतर मानवीय-चेतना जैसा कुछ शेष रह गया है।

कृष्णाबाई शंकरिया का सहारा तेकर भीख मांगती है, पर उसके भीतर एक माँ का, एक महतारी का दिल है। शंकरिया जब चार साल का था, तब खेलते-खेलते रेलवे-लाइन तक पहुँच गया था और उसे बचाने को दौड़ती-दौड़ती कृष्णाबाई उसे रेलवे-लाइन से बाहर फेंककर, खुद ''लोकल-ट्रेन'' के नीचे कट गयी थी।[१०७] और तबसे मामा ने शंकरिया को अपनी रखैल ताराबाई को सौंप रखा था। मामा ने ताराबाई को

इसलिए पत्नी बनाकर रखा था कि उससे भिखारी बच्चों की व्यापार में मामा को मदद मिलती थी। बीड़ी-कारखाने के लिए उसने अलग से एक मराइन बाई से शादी कर रखी थी। ताराबाई उन दिनों शंकरिया को लेकर खुद भीख मांगने निकलती थी और इसलिए मामा उसे भीख मांगने की कला में निपुण बनाने में लगा हुआ था, ताकि ताराबाई की दारू का खर्चा सिर्फ वही छोकरा निकाल ले।[१०८]

दसवां लगते शंकरिया जेकब दादा के गिरोह में दारू की बोतलों के हेर-फेर में लग गया था। उसी में पकड़े जाने पर उसे धारवाड़ की बच्चों की जेल में भेज दिया गया था। बच्चों की जेल में वार्डरों, चौकीदारों और पुलिस ने उसके साथ बड़ा अमानुषिक व्यवहार किया था। वहीं जेल में उसकी मुलाकात जेबकतरे यासीन से हुई। जेल से छूटने के बाद यासीन उसे अपने उस्ताद कादिर से मिलवाने के लिए ले गया था। मामा ने उसे भीख की शिक्षा - दी थी, कादिर उस्ताद जेबकतरे की शिक्षा देते हैं। कादिर उस्ताद उसे "सींक का सौदा", "लक्कड़ का सौदा" और "झटके का सौदा" कैसे उठाना चाहिए यह सब सिखाते हैं। पहले प्रकार में ऊँगलियों के सहारे किसीकी जेब से पैसे खींच लिये जाते हैं, दूसरे में ब्लेड से जेब कतरने की होती है और तीसरे में मौका देखकर झटके से चीज उठा लेनी होती है। शंकरिया इस "झटके" वाले सौदे में पकड़ा गया था।

(१४) इब्बू मलंग : ---

"इब्बू मलंग" बम्बई की निम्नवर्गीय जिन्दगी को रूपायित करनेवाली कहानी है। इसमें इब्बू मलंग, नबीपाड़ा का दादा नागप्पा, रमजान, कादिर, सुन्दरीबाई (सईइन), सुलतानी भंगिन तथा शकुन्तला घाटन आदि पात्र हैं। समूची कहानी इबादत हुसैन उर्फ इब्बू मस्तान उर्फ इब्बू मलंग के इर्द-गिर्द चक्कर काटती है। जिस प्रकार लक्ष्मीनारायण लाल के एक उपन्यास "प्रेम एक अपवित्र नदी" में पंचानन नामक चोर को परम ज्ञानी-

ध्यानी साधुबाबा बना दिया जाता है और फिर उसका प्रयोग चुनाव में अपने विरोधी को हरवाने के लिए किया जाता है, ठीक उसी प्रकार बम्बई के नबीपाड़ा का मशहुर दादा नागप्पा अपने वरली-मटका और जुगार के फायदों के लिए तथा दूसरे आर्थिक हितों के लिए ''इब्बू मस्तान'' से ''इब्बू मलंग'' बना देता है।

इबादत हुसैन एक मनचले प्रकार का मनमौजी इन्सान है। अच्छा खाना-पीना और इश्क ये दो उसके शौक है। ऐसे में वेश्याओं के पास जाने के कारण उसे सिफीलीश हो जाता है और उसके बाद भी वह वेश्याओं के यहाँ जाना बन्द नहीं करता। इसी क्रम में उसका यह रोग सुन्दरीबाई को हो जाता है। बाद में उसे पता चलता है कि यह सुन्दरीबाई और कोई नहीं पर उसकी बहन है -''उसके चाचा की लड़की, चचाजाद बहन। उसका नाम सईदन था। सईदन इसी रोग में मर जाती है। सईदन की ऐसी दर्दनाक मौत का बड़ा भारी सदमा इबादत हुसैन को बैठता है और वह गांजा-चरस-दारू के चक्कर में पड़ जाता है। अब उसके जीने का कोई मकसद नहीं रहता है। होटलों के ढेर सारे बर्तनो को मांजता है, जो भी और जैसा भी मिले उसे खाकर और गांजा-चरस-दारू के नशे में धुत्त होकर कचरे के ढेर पर वह पड़ा रहता है। गंदी-गोबरी अवस्था में कई-कई दिनों ते वह नहाता भी नहीं है। अतः लोग अब उसे इब्बू मस्तान कहते है।''

इस इब्बू मस्तान पर नागप्पा की नजर पड़ती हे और वह अपना प्लान बना लेता है। एक दिन वह इब्बू को सोते हुए जगाता है। इब्बू अपनी आदत के मुताबिक ऐल-फैल बकना शुरू कर देता है। तब नागप्पा उसे कहता है - ''अरे, ओ मस्तान ! खामखा काहे को तूफान खड़ा कर रिया है, यार ! हम कोई तेरे दुश्मन थोड़ी ही हैं? हम तो स्साले तुझे मस्तान से मलंग, याने पीर-फकीर बनाना चाहते हैं। प्यारे, खुदा ने तो तुझे वो चोला बख्श रखा है कि स्साली अच्छी-अच्छी औरतें तेरी चम्पी मालिश करें, मगर तू बेवकूफ है कि कुतियों के साथ पड़ा रहता है...चल उठ, खामखा मेरा यार परीशान कर रहा। अबे कादर, जरा अद्धी तो दे मस्तान

को ....।''[१०९]

इब्बू के साथ जो कुतिया लेटी रहती थी उसने नागप्पा को काट लिया था, सो नागप्पा के साथी रहमान ने उसकी पीठ में छुरा घोंप दिया था। इसमें रहमान पर इब्बू बुरी तरह से बिगड़ उठा था। और उसे माँ-बहन की गालियाँ बक रहा था। तभी नागप्पा उपर्युक्त बात कहता है। जब इब्बू को होश आता है कि नबीपाड़ा का दादा नागप्पा उससे बात कर रहा है, तब वह थोड़ा ढीला पड़ता है। पहले तो नागप्पा इब्बू की उस चहेती कुतिया की मजार बनवाता है और उसके साथ अनेक कहानियाँ प्रचारित हो जाती हैं। मजार बनाते समय इब्बू नागप्पा से पूछता -''नागप्पा दादा, यार, मुझे तू कैसे पीर-मलंग बनाएगा, मेरे में तो ऐसा कोई हुनर या चमत्कार नहीं ?''[११०]

इस पर नागप्पा हंसते हुए कहता है - ''अबे मस्तान, तूने जो बेमिसाल हुलिया बना रखा है अपना और जबान पर आबेजमजम का पानी चढ़ा रखा है, इससे बड़ा हुनर और क्या होगा, बे?....देख, तेरा काम और कुछ करना नहीं। पहले हम उर्स भरवाएँगे और जश्न मनवाएँगे, खैरात बंटवाएँगे। फिर सट्टे के आंकड़े बांटने शुरू कर देंगे। तेरा काम सिर्फ इतना रहेगा कि कोई अगर तुझसे आंकड़ा मांगने लगे, तो जो मुँह में आए , बकते ही चले जाना और माँ-भैन-जोरू की गालियां देते जाना। मौके-बेमौके एकदम मादरजात नंगा हो जाया करना और हाथ-पांवों को अजीब ढंग से हिलाया करना। बाकी का काम हम खुद संभाल लेंगे।''[१११]

और नागप्पा का प्रचार-तंत्र वह रंग लाता है कि इब्बू मस्तान इब्बू मलंग हो जाता हैं। ''नबी पाड़े के एक कोने में उस कुतिया का शानदार मजार बना दिया गया है। हर समय नयी रेशमी चादरों और फूल-मालाओं से मजार ढंका रहता है। सारे बांदरा और आसपास के उपनगरों में यह खबर फैल चुकी है कि इब्बू मलंग के रूप में ख्वाजा अजमेर वाले पीर बंगालेवाली जादू की बेगम के साथ घूमते फिरते थे। उसे मामूली-सी कुतिया समझकर रमजान और कादिर ने छुरा भोंक दिया, तो अब हालत यह है दोनों की कि चार दिनों से टट्टी-पेशाब बन्द है और जबान को यों

लकवा मार गया है कि "या खुदा, या पीर, या मलंग" कराहने के अलावा और कोई बात जबान से फुटती ही नहीं है। लाख-लाख माफियाँ मांगते हुए नागप्पा दादा ने इब्बू मलंग को नबीपाड़े में ही रोक लिया है और बंगालेवाली का खूबसूरत मजार बना दिया है। बंगालेवाली की रूह तो उसी समय इस तरह मलंग की आँखों में समा गई थी, जैसे कोई जलता हुआ शोला पानी के तालाब में डूब गया हो, मगर उसका पाक जिस्म मजार के नीचे दफन है और जो वहाँ मत्था टेकता है, मन मांगी मुराद पूरी होती है।"[११२]

देखते-देखते कोलीवाड़ा, भिंडी बाजार, कांदीवाडी, पिल हाउस, मुंगरापाड़ा, हाजीअली, डोंगरी, वरली, मसजिद बंदर- मतलब कि पूरे बम्बई में खबर फैल जाती है कि अजमेरवाले ख्वाजा अब इब्बू मलंग के रूप में नबीपाड़ा की बंगालेवाली की मजार के पास बैठते हैं और मनमांगी मुरादें पूरी करते हैं। चढ़ावे का ढेर लग जाता है। लोग नोटों की मालाएँ कदमों पर चढ़ाते हैं।

रात को कभी "शेर-पंजाब होटल से मंगाया हुआ साबुत मुर्गा मिलता है पराठों के साथ, कभी बकरे की गोश्त की शहंशाही बिरयानी और कभी खुश्क और तरीदार पापलेट, बांगड़ा मछलियों के डोंगे और बासमती। दिन-भर में दो बोतल दारू मिल जाती है और चरस इतनी कि आँखों की पुतलियाँ हमेशा बाहर निकली रहती है। वह सुलतानी भंगिन जो कभी इब्बू मस्तान पर थूंक कर चली गई थी मत्था टेकने आती है। नशे की हालत में मलंग अपनी लुंगी को ऊपर तक चढ़ा लेता है। गली में जाती हुई सुलतानी को नागप्पा और रमजानी घेर लेते हैं और उसे पांच की पत्ती थमाते हुए उसके कानों में कुछ फुसफुसाते हैं। दूसरे दिन "क्लोजिंग" का आंकड़ा खुलते ही शोर मचाती हुई मलंग के कदमों पर मत्था टेकने पहुँच जाती है - "या मेरे पीर, या मेरे मलंग, मेरे गुनाहों को बख्श ! ... अरे मुझ कमीनी की औकात ही कितनी हुई, मेरे मौला? पीर फकीर ने लुंगी उठाकर दरसन दिखाए , तो मैं उल्लू की पट्ठी शरम के मारे गालियाँ देने लगी। मगर फिर ख्याल आया कि मेरे पीर-फकीर ने तो मुझे

"आंकड़ा" दे दिया है। लगा आई अठन्नी का डबल आंकड़ा, तो वही इक्के से तिग्गी का लंबर आ गया, मेरे मौला, मेरे मलंग।"[११३]

इस प्रकार इब्बू की मलंगगिरी चलने लगी और नागप्पा की चारों ऊँगली घी में रहने लगीं। जिस प्रकार नागार्जुन के उपन्यास "इमरतिया" में जननिया मठ की स्थापना के बाद न्यस्त हितवाले लोगों की संपत्तियाँ बढ़ने लगी थीं, ठीक इसी प्रकार यहाँ नागप्पा के भी आमदनी का एक बहुत बड़ा जरिया निकल आया था। सुलतानी की पड़ोस में शकुन्तला घाटन रहती थी। उसका पति माधोराव लोकन ट्रेन से कटकर मर गया था। घर-घर बरतन-भाड़ें करके वह बच्चों की परवरिश कर रही थी। यद्यपि शकुंतला खुद पहले माधोराव को आंकड़ा नहीं खेलने देती थी, पर अब बच्चों का ख्याल करके और सुलतानी की बातों में आकर एक बार खेल लेना चाहती है। अतः वह भी मत्था टेकने चली जाती है। नशे में कांपती अंगुलियों के कारण शकुन्तला के सिर को उठाने के प्रयत्न में मलंग की लुंगी ऊपर उठ जाती है। शकुन्तलाबाई विस्मय से अभिभूत होते हुए पैरों पर मत्था टेक भाग खड़ी होती है और कुल जमा पूंजी तेबीस में से बीस रूपये "इक्के-पे-दुग्गी" और "दुग्गी-से-इक्के" का "डबल आंकड़ा उसने लगा दिया था। "ओपन" के आंकड़े में तो "दुग्गी"आ जाती है। अब शकुन्तलाबाई को क्लोजिंग के आंकड़े का इन्तजार है। वह मन-ही-मन कई बार हिसाब लगा चुकी है। बंगालेवाली की मजार पर चढ़ायी जानेवाली चादर और मलंग शा की लुंगी के बाद कितने पैसे उसके पास रहेंगे उसक विचारों में वह खो जाती है। इतने में "क्लोजिंग" का आंकड़ा आ जाता है - "खुल गया, खुल गया, नं.पांच "करोड़पती" खरीदने वालों के तकदीर का फाटक खुल गया आ गया, दुग्गी से सत्ते का आंकड़ा आ गया।"[११४]

शकुन्तलाबाई की सारी उम्मीदों पर पानी फिर गया। उसकी तो सारी जमा पूंजी डूब गई। तब वह बौखलायी हुई मजार पर जाती है और इब्बू मलंग को खूब खरी-खरी सुनाती है। गंदी गालियाँ बकती है - "अरे, ओ, मस्तान, कुल बाईस रूपये मैंने अपने कुत्ते के पिल्लों का पेट

पालने को बचा रखे थे... अब बना दे मेरे बच्चों के लिए यहीं एक मजार और जिंदा ही दफना दे मुझ कुतिया को यहीं पर। और फिर लुंगी हिला-हिलाकर दे सट्टे के झूठे आंकड़े और दारू-चरस पीकर लिपटा रह सुलतानी भंगन की चूतड़ों से .... हत्त, तेरे लबार हरामजादे की।''[११५]

जब नागप्पा बुरी तरह फटकार कर शकुन्तला को भगाने की चेष्टा करता है, तब इब्बू की चेतना मानो जग जाती है और वह नागप्पा के सामने खड़ा होकर चिल्लाता है - ''तू परे हट बे, दोजख के कुत्ते ! स्साला आया बड़ी पीर-फकीर की दुआ देनेवाला। तू कौन है अपनी भैन का कटड़ा, मुझे पीर-मलंग बनाने वाला ?... यह बेचारी महतारी ठीक कहती है कि मैं मलंग नहीं चोर-लबार और मक्कार हूँ। ... और तू भी पक्का बदमाश और जालसाज है मादर ....''[११६]

कहानी का अन्त इस प्रकार है : ''ले, कसाई कुत्ते, उस दिन तैन हरामजादे, मेरी कुतिया की पीठ पर छुरा घुसेड़ दिया था , आज अपनी भैन के टुकड़े, मेरे ही घुसेड़ के मुझे यहीं दफना दे। बना दे मेरा भी मजार मेरी कुतिया की बगल में। ... धीरे-धीरे चरस और आक्रोश से ऊपर को चढ़ी पुतलियां नीचे को बैठती चली गईं और तब इबादत हुसैन पूर तरह फूट-फूट कर रो पड़ा।''[११७]

(१५) मिट्टी : ---

''मिट्टी'' एक अत्यन्त करूण और हृदय द्रावक कहानी है। यदि मटियानीजी की सर्वश्रेष्ठ कहानियों को संकलित किया जाए , तो यह कहानी उनमें अवश्य स्थान प्राप्त कर सकती है। ''मिट्टी'' का लाक्षणिक अर्थ तो मुर्दा होता है। मृत व्यक्ति के संदर्भ में कहा जाता है कि ''मिट्टी कब उठने वाली है?''। परन्तु यहाँ पर जिन पात्रों को लिया गया है, उनकी जिन्दगी ऐसी है, कि वे जीते-जी ''मिट्टी'' के समान हैं।

कहानी का परिवेश इलाहाबाद का है। मटियानीजी की नगरीय परिवेश की कहानियां प्रायः बम्बई या इलाहाबाद के परिवेश को लेकर ही लिखी

गयी हैं। पस्तुत कहानी की गनेशी एक मुसीबतजदा लाचार और मजबूर औरत है। दो-तीन पुरूषों ने अपना स्वार्थ निकल जाने पर उसे निकाल दिया। इस प्रकार "रहते-खसमों" के वह रांड-विधवा का जीवन बिता रही है। इन पतियों ने उसे कोई जीने का मुकम्मल आधार तो नहीं दिया, ऊपर से दो बच्चों का जंजाल उस पर और लाद दिया। इन बच्चों की परवरिश वह भीख मांगकर कर रही है। अकेली स्त्री को अच्छी भीख नहीं मिल सकती, अतः प्रायः वह किसी कोढ़ी, लूले-लंगड़े-अपंग, भिखारी की खोज में रहती है और उससे संबंध गांठ लेती है। आजकल उसने लालमन नामक कोढ़ी को गांठ रखा है। वह उसकी गाड़ी को घुमाते हुए अपने बच्चों के लिए दो पैसे कमा लेती है।

अपने बच्चों के लिए लालमन जैसे गंदे-गोबरे और कोढ़ी की गाड़ी वह घुमाती है उसके गू-मूतर साफ करती है। उसे नहलाती-धुलाती है। उसके गोड़ दबाती है। लालमन खाने का बहुत लालची है। उसे बारंबार दस्त लग जाते हैं, फिर भी जलेबी खाने की ललक को वह रोक नहीं पाता है। गनेशी डाक्टर के पास उसकी दवाई लेने जाती है, तब डाक्टर के मुँह से एक दूसरे मरजी के संदर्भ में एक शब्द सुन लेती है - "डायाबिटीज"। गनेशी इस शब्द को पकड़ लेती हैं। डाक्टर उस मरीज को कह रहा था कि इस रोग में मीठा जहर के समान होता है। गनेशी इस बात को पकड़ लेती है। लालमन की जलेबियों के पीछे बहुत खर्च होता था, इसलिए गनेशी उसके मन में यह डर बिठा देती है कि उसे "डायाबिटी" है। ऐसा वह इसलिए करती है ताकि अपने बच्चों के लिए दो पैसे ज्यादा जोड़ सकें।

गनेशी हमेशा एक भय और दहशत के वातावरण में जीती है। लालमन की मृत्यु की कल्पना से भी वह कांप-कांप जाती है। "सत्रह-अठारह बर्षों की फजीहतों से भरी ज़िन्दगी के बाद, अब थोड़ी-सी राहत मिली है। चार-पांच सौ भी लालमन के लुढ़कने से पहले किसी तरह जमा हो जाते, तो एक बार फिरसे कहीं पान-बीड़ी की गुमटी करती।"[११८]

जब-जब गनेशी अपने बेटों के बारे में सोचती है, वह भावुक हो

जाती है। उसकी आँखों में भावी-जीवन के सपने तैरने लगते हैं - ''जब भी वह कल्पना करती है कि ये दो बेटे मरते दम तक उसके ही साथ रहेंगे और चाहें रिक्शा-मजूरी करें, चाय-पान की गुमटी चलाएँ , सास की तरह घर चलाने का अवसर कभी उसे भी मिलेगा।''[११९]

परन्तु गनेशी का यह सपनी भी ''मिट्टी'' हो जाता है। ''डायाबिटिश'' का डर लालमन में ऐसा बैठ जाता है कि उसके दस्त और बढ़ जाते हैं और एक रात हाजत करते-करते ही लुढ़क जाता है। अनुभवी गनेशा समझ गई कि लालमन अब मिट्टी हो चुका है वह अपना जी कड़ा कर लेती है। खेत में से ढेर-सारी मिट्टी लाकर वह लालमन के पीछे बिखार देती है। जल्दी-जल्दी सारा सामान समेटती है। पोंटलियां बांधने तक ननकू-लछमन के रोने चिल्लाने की ओर भी ध्यान नहीं देती है। दवा की शीशी जो लुढ़की पड़ी थी, उसे दूर फेंकते हुए कहती है - ''चलो, रे छोकरो, यहाँ से चले चलें।''[१२०] ऐसा कहते हुए वह अपने दोनों बच्चों को छाती से भींच लेती है और फिर फूट-फूट कर रो पड़ती है।

लालमन और गनेशी में कई बार कहा-सुनी हो जाती है, पर बावजूद इसके लेखक ने उनके मानवीय-मूल्यों को उकेरा है। कहानी के प्रारंभ का यह वार्तालाप देखिए -

''ए गनेशी, यहीं किनारे लगा ले। हमको बिठाकर, गाड़ी में से रेजगारी इकट्ठा कर ले। तनिक निबट लें, साफ-सफाई हो जाए , तो चंदर हलवाई की दुकान से पाव-भर जलेबी लेती आना। अभी गरम-गरम छनती होगी। ई तुमको ससुर बहुत गंदी आदत पड़ गयी, लालमन ! हगे के बखत भी खाने-पीने की ही रट लगाये रहते हो। पचावे की सकत तो तुम्हारे देह में रही नहीं, मार मीठी चीजें भकोसे जाते हो।

दस्त रूकें भी तो कैसे ससुर ?

धोवत-धोवत हमार जी गंधाय इस पर लालमन कहता है - अब आगे- आगे कहाँ। अल्लापुर लेती जाओगी क्या ? यहाँ जी टूट रहा है, बर्दाश्त नहीं किया। ये जो ससुर गाड़ी में दायें-बायें बछड़ों की तरह लगे हैं, इन्हें कुछ नहीं बोलोगी। मीठा देखे ही ससुरे लार छोड़ने लगते हैं।

तुमको तो हमारा ही खाया-हगा ज्यास्ती दिखेगी। आखिर अपन राम तेर लगते ही कौन-से खसम हैं! भाड़े के टट्टू की हरी-सूखी की फिकर कौन करता है? बहुत जी घिनाय गया होय हमसे, तो ऐसे ही छोड़ के चली जा। हम करमफूटों से परमात्मा घिनाय गया, तू तो आखिर पराई औरत है।''[१२१]

तो यही लालमन एक स्थान पर भावुक्त के क्षणों में कहता है- ''अब तो मेरी माँ-बहन-जोरू जो है, सब तू है गनेशी! भगवान श्रीराम का नाम भी तेरे बाद में ही रह गया। कल जो ससुरा जलेबी खाये, वह तेरा ही गू खाये। अपंग-अपहिज हूँ, मेरे कहे-सुने को अपन बच्चों का कहा-सुना मान लेना।''[१२२]

एक दूसरे स्थान पर लालमन कहता है: ''हम अपंग-अपाहिजों की ज़िन्दगी तो ढोर-जनावरों की तरह कटती है, मेरी भी कट गई। अब तो साठ होने को आये होंगे। ... यह ससुरी चीनी की बीमारी जान भले ही ले जाए, लेकिन तूने माई की याद दिला दी आज। अपने जिन खसमों के किस्से तू सुनाया करती थी, वे तो ससुरे कुत्तों की तरह सवारी गांठ के निकलते गये। ... लेकिन यकीन मान, जो तेरे ये दो बच्चें हैं ना, मेरे मर जाने पर मेरे गोश्त से भी इनकी भलाई होती हो, तो लालमन चूं नहीं करेगा ....''[१२३]

लालमन की बातों से गनेशी भी भावुक हो जाता है और कहती है - ''तू क्या मुझको निरा लालची समझता कि इन बच्चों के स्वारथ से ही तेरे साथ लगी हूँ? स्वारथ तो सारे संसार में है, लालमन! इसी से दुनिया बंधी है, लेकिन इन्सानियत भी कोई चीज है। ....कभी ससुरे नासपीटे अच्छे-अच्छे बाबू लोग लार गिराते थे। .... खैर, पेट में गये भात को चावलों की तरह बीनने से कुछ हाथ थोड़े लगना है। ... पहले भी तीन हुए। एक-एक करके कौन कुत्ते के पिल्लों की तरह कहाँ खिसका, ऊपरवाला जाने। पंछियों का-सा नाता निभाना था, सो निभा दिया। भगवान की बहुत बड़ी किरपा रही, जो लड़की-बिटिया नहीं दिया, नहीं तो जन्म भर दुर्गत देखनी पड़ती। अब तो, बस, इन दोनों पर प्राण टिके हैं। अपना

खाया तो हराम लगता है, इनके मुँह में जाता दाना मोती है। ....और सुन, लालमन, अभी ऐसी कौन-सी लाइलाज हालत में तेरी बीमारी पहुँच गई। एक-दो जलेबी दहीं से साथ खा लिया करना।"[१२४]

इस प्रकार यह "मिट्टी" कहानी एक "मिट्टी से जुड़े" लेखक द्वारा लिखी गयी है और उसमें गलीच-गलीत जीवन की मिट्टी में भी कैसी सोंधी खुश्बू है, उसका परिचय होता है।

(१६) मैमूद : ---

यह इलाहाबाद स्थित खुल्दाबाद के मुस्लिम-परिवेश की कहानी है। एक निहायत गरीब मुस्लिम-परिवार जिसने कभी अच्छे दिन भी देखे थे, उसे लेकर लेखक ने यह कहानी लिखी है। इन कहानियों से यह प्रतीत हुए बिना नहीं रहता कि लेखक की यह अनुभव-पूंजी बहुत ही समृद्ध है। प्रोफेसर देसाई की ये पंक्तियां बरबस याद आ जाती है -

"मिले थे गम कई तो फिर यारो हम संभल बैठे;
मिली होतीं अगर खुशियाँ तो कितने बेजुबां होते।"

यही बात मटियानीजी पर लागू होती है, जो जिन्दगी उन्होंने भोगी, देखी और महसूसी, उसका ही परिणाम उनकी ये कहानियां है।

मैमूद जद्दनबी का पालतू बकरा है। इस बकरे की जद्दनबी बहुत प्यार करती है। एक स्थान पर अपनी पड़ोसन रहीमन को वह कहती है - "अब तुझे यकीन नहीं आयेगा, रहीमन। ये साला तो इन्सानों की तरह जज्बाती है। ... इन्सान जब बूढ़ा हो जाता है, तब कोई उसे ऐसा चाहिए, जो उसके "आ" कहने से आए और "जा" कहने से जाए। दुनियावालों की दुनिया जाने, सुलेमान की अम्मा, मेरा तो यह नामुराद मैमूद ही है, जिस साले को इस खुल्दाबाद की नबीवाली गली से आवाज़ लगाऊं कि-"मैमूद! मैमूद" तो चुगद नखासकोने के कूड़ेखाने पर पहुँचा हुआ पीछे पलटता है और "बे-बे" करता वो दौड़ के आता है, मेरी तरफ़ की तू जान, सगी औलाद क्या आयेगी। बस, साला जब कुनबापरस्ती पर निकलता

है, तो मेरी क्या खुदा की भी नहीं सुनेगा।''[१२५]

जद्दन अपने इस बकरे को बहुत चाहती है। एक बार रहमीनबी के मुँह कुछ ऐसी-वैसी बात निकल जाती है, हालांकि वह बात रहीमन ने बकरे की तारीफ में ही थी, पर जद्दन बहुत-बुरी तरह से उस पर अर्रा पड़ी थी। यथा - ''तुम सवा-डेढ़ साल का बताती हो, मगर इसके रान-पुट्ठे देख के कोई तीन से नीचे का नहीं कूतेगा। बीस-पचीस सेर से कम गोश्त नहीं निकलेगा इस बकरे में। लगता है, तुमने रोटी-दाने के अलावा घास से परवरिश की ही नहीं ?''[१२६] हालांकि रहीमन ने सारी बातें मैमूद की प्रशंसा में कही थी, लेकिन इन्हें सुनते ही जद्दन की त्यौरियां चढ़ गई थीं और रहीमन को वह बुरी तरह से फटकार देती है -''अरी ओ रहीमन, आग लगे तेरे मुँह में। मतलब निकल गया तेरा (रहीमन अपनी बकरी फिराने के लिए उसे मैमूद के पास लेकर आयी थी।) तो मेरे मैमूद का गोश्त तौलने बैठ गयी? तेरा खाविन्द तो बढ़ई है, री, ये कसाइयों की घरवालियों की-सी बातें कहाँ से सीखी हो? या खुदा, हया और रहम नाम की चीज इन्सानों में रही ही ना। गोश्तखोरों की नजर और कसाई की छुरी में कोई फर्क थोड़े ना होता है। अरी रहीमान, कहे देती हूँ - आगे से ऐसी बेहूदी बातें ना करना और आइन्दे से अपनी बकरी कहीं दूसरी जगे ले जाना। कोई आइन्दे से अपनी बकरी कहीं दूसरी जगे ले जाना। कोई सुसरा पूरे खुल्दाबाद में मेरा एक मैमूद ही थोड़े ठीका लिए बैठा है...''[१२७]

जिस मैमूद के गोश्त के बारे में जद्दन सुन भी नहीं सकती थी, उसका गोश्त यदि उसकी थाली में परोसा जाय तो क्या हो सकता है? पर यह त्रासदी ही कहानी का केन्द्र-बिन्दु है। हुआ यों था कि बेटे शराफत के लिए रायबरेली से एक रिश्ता आया था। लोग शराफत को और खानदान को देखने आ रहे थे और उनकी आवभगत के लिए बकरे का गोश्त जरूरी था। घर में इतनी तंगदस्ती चल रही थी कि बाजार से गोश्त खरीद लाना उनकी हैसियत के बाहर था और लिहाजा मैमूद को ही हलाल किया जाता है।

जद्दन इतना दुखी होती है, इतना रोती है, जिसका कोई हिसाब नहीं।

अशरफमियां के लाख समझाने पर भी उस दिन वह खाना नहीं खाती है। फिर भी जब उसके सामने थाली लायी जाती है, तब वह फूट पड़ती है - ''तुम बेदर्दों से ये भी न हुआ कि मैं अव्वल दर्जे की गोश्तखोर औरत जब कै रयी हूँ के बेटे ''शहनाज'' हमें गोश्त-वोश्त ना देना। तो इसकी कोई तो वहज होगी? और जहीर के अब्बा इन्सान दाढ़ी बढ़ा लेने से पीर नहीं हो जाता। तुम ये मुझे क्या नसीहत दोगे के सभी बकरों के दो सींग होत हैं? इतना तो नादीदा भी जानता है। दुनिया में सारे इन्सान भी खुदा ने दो सींग वाले बकरे की तरह, दो हाथ-दो पांव वाले बनाये? लेकिन औरत तो तभी रांड होती है, जब उसका अपना खसम मरता है? अम्मा तो तभी अपनी छाती कूटती है, जब उससे उसका अपना बच्चा जुदा होता है? ये भी मैं जानती हूँ कि मेरे मैमूद में कोई सुर्खाब के पर नहीं लगे थे, मगर इतना जानती हूँ कि मेरी तकलीफ जितनी वह बदनसीब समझता था, न तुम समझोगे, न तुम्हारे बेटे .... ! समझते होते तो, क्या किसी हकीम ने बताया था कि मेहमानों को इसी बकरे का गोश्त खिलाना, और तुम भी भकोसना, नहीं तो नज़मा-जुकाम हो जायेगा? जहीर के अब्बा, असूलों का तुम पे टोटा नहीं, मगर इस वक्त अब हमें बहुत जलील न करो। शहनाज से कहो, उठा ले जाए, नहीं तो फेंक दूंगी उधर! जुबेद से कह देना, अब पंडत के हियां से सब्जी लाने की भी कोई जरूरत ना रही। मेरा पेट तो तुम लोगों की नसीहतों से ही भर चुका।''[१२८]

ऐसा नहीं कि जद्दन घर की माली हालत और उनकी मजबूरी को नहीं समझती। पर उसको इतना दुःख न होता यदि वे मैमूद को बेचकर बाजार से गोश्त खरीद लाते या दूसरा बकरा ही खरीद लाते। मैमूद को यह अपना बेटा समझती है और एक माँ, एक महतारी, अपने बेटे का गोश्त कैसे खा सकती है?

(१७) भय : ---

भय, दहशत और बीभत्सता की चरम सीमा की यह कहानी है। कथा के नायक को कोई नाम नहीं दिया गया है। प्रथम पुरूष एक वचन में कहानी कही गई है। कथा-नायक "मैं" के पिता की जब मृत्यु होती है, तब अत्यन्त करूण स्वर में रोते-चिल्लाते हुए, धीरे से कोई देखे ना इस तरह से उसकी जेबों को टटोलती है। जब भी इस बात का उसे स्मरण हो आता है, उसे लगता है कि जहाँ तक मूलभूत जीवन-वृत्तियों का सवाल है, मनुष्य और जानवर में कोई बुनियादी फर्क नहीं है। कहानी में "मैं" के अतिरिक्त, ननकू "मैं" मां, ननकू की औरत, दो बच्चे और सीताराम का उल्लेख आता है।

सीताराम की लावारिश लाश पड़ी है। जहाँ वह लाश पड़ी है उसके सामने वाली दीवरा पर पांव लटकाये दो बच्चे बैठे हैं। थोड़ी देर में दो व्यक्ति उस लाश को गौर से देखते हैं और कुछ सिक्के निकालकर उसकी छाती पर डाल जाते हैं। वे बच्चे सतर्कता के साथ सीताराम की लाश के पास आते हैं और पैसों को समेटकर भाग जाते हैं।

कथा-नायक "मैं" ने एक बार एक मरे हुए बैल को देखा था। उस बैल के मुँह में केले का छिलका था। गाय केले के छिलकों को बैल के मुँह से खींच-खींच कर खा रही थी।[१२९] यह दृश्य उसकी चेतना में बैठ गया था। "और इस समय दोनों छोटे-छोटे बच्चे जिस सतर्कता के साथ सीताराम की लाश पर से पैसे उठाकर भाग गए हैं ... उसे (कथा-नायक को) अपनी मां की चित्कार, पिता की लाश और उस मरे हुए बैल तथा उसके मुँह में दबे हुए छिलकों को खींचती गाय-सबका स्मरण एक साथ आ रहा है।"[१३०]

कथा-नायक इस संदर्भ मे सोचता है - "उसे यह सोचना बिल्कुल रहस्यमय लगा अपने लिए कि जस तरह ही दहशत और जल्दबाजी उसकी माँ और उन दोनों बच्चों में थी -गाय में उस तरह की चेतना बिल्कुल नहीं थी। वह इस बात को साफ-साफ पहचानता नहीं, मगर अनुभव करता है

कि जानवरों से अपने को अलग महसूस करने की आवश्यकता सिर्फ घृणा में से जन्म लेती है और इस तरह की घृणा को, जिसे चेतनागत भय कहना ज्यादा सही हो सकता है, जानवर ज्यादा महसूस नहीं करते।''[१३१]

इस कहानी का विश्लेषण करते हुए डा.श्रीमती सुषमा शर्मा ने लिखा है -''यहाँ गौरतलब मुद्दा यह है कि वह कौन-सी मजबूरी रही होगी कि एक पत्नी मरते हुए पति की जेबों को तलाशती है। दूसरे इस कहानी में जो सबसे भयानक स्थिति है, वह यह कि यहाँ मनुष्य की संभावना पर ही प्रश्नचिह्न-सा लग गया है और जो अमानवीय स्थितियां उभरकर आ रही हैं उनसे चित्त भयाक्रान्त हो जाता हे।''[१३२]

आगे काहनी में इस रहस्य का स्फोट भी होता हे कि कथा-नायक सीताराम भिखारी की लाश को उठा लाता है। शायद उसे बच्चोंवाली घटना से ज्ञात होता हे किस इस लाश का बाकायदा अपने फायदे में इस्तेमाल हो सकता है। अतः वह ननकू की बीबी को भय दो बच्चों के लाश पर दहाड़ मारकर रोने के लिए भागीदारी पर ले आता है। कहानी में कहीं यह भी संकेतात्मक ढंग से बताया गया है कि ननकू की औरत बरसों दारू और रंडी का पेशा करती रही है। ननकू की औरत सीताराम की लाश पर ऐसे दहाड़ें मार-मार कर रोती है कि कोई अपने खसम की मौत पर भी क्या रोता होगा। यहाँ ननकू की औरत की बेहयाई खुल्लमखुल्ला आयी है, पर सवाल फिर भी यह उठता है कि ऐसी नारकीय और अमानुषिक वृत्तियां मनुष्य में क्यों और कैसे आती हैं। लगातार गरीबी, बेबसी और भूख ही उनकी चेतना को शायद खा जाती हैं।

कहानी का व्यंग्य यह है कि एक भिखारी जो जिन्दगी-भर भीख मांगता रहा, उसकी लाश का इस्तेमाल भी भीख मांगने के लिए होता है। कथा-नायक अपना भय, दहशत और अपराध-बोध यों कहकर झटक देता है - ''अरे, तू सीताराम भिखारी की लाश पर से पैसे इकट्ठे किय जाने का गम क्यों किये जा रहा है? तू मर जाएगा, तो तेरी लाश पर भी ...,''[१३३] इस कहानी को पढ़कर के. अब्बास की फिल्म ''शहर और सपना'' मराठी कथाकार जयंत दलवी कृत ''चक्र'' पर आधारित फिल्म ''चक्र'' ओर

जगदम्बाप्रसाद दीक्षित कृत उपन्यास ''मुर्दाघर'' के कुछ दृश्य आँखों के सामने घूम जाते हैं।

(१८) रहमतुल्ला : ---

कहानी के केन्द्र में रहमतुल्ला नामक एक बच्चा है। नाम तो उसका रहमतुल्ला है, लेकिन उस पर किसीको रहम नहीं आता। उसके भाग्य में दर-ब-दर की ठोकरों खाना ही बदा है। उसकी माँ (इजाजान) खिमुली है और बाप फतेउल्ला के घरबार चली गई थी ओर तब से उदेराम के लेखे खिमुली दीदी मर गई थी। रहमतुल्ला के जन्म के बाद पहले फतेउल्ला और बाद में खिमुली भी खुदा को प्यारी हो जाती है, तब मसीहा मस्जिद में अजान की बांग पुकारने वाले मियांमुसीफुद्दौला रहम खाकर उसे उठा लाते हैं और रहमतुल्ला में ऐसे खो जाते हें कि दूसरे दिन ''अल्ला हो अकबर'' की बांग पुकारना चूक जाते हैं।

इस पर मसीहा मस्जिद के मौलवी साहब मियांमुसीफुद्दौला को साफ-साफ कह देते हैं - ''म्यां, अब कबर की ओर की सफर में उस लावारिस छोकरे की दोस्ती मत पालो। अब आपका ये वक्त खुदा की खिदमत करने का आया हुआ है, छोकरों को फुटबोल खिलाने का नहीं। वैसे आपकी मर्जी। मगर ये बात कह दूं कि आज अजान छूटी है, तो उसकी सजा खुदा देगा। मगर कल से फिर कोई गुनाह हुआ, तो मजबूरन आपको खुदा की खिदमत से अलग कर दिया जाएगा।''[१३४]

पर खुदा ने मुसीफुद्दौला को माफ नहीं किया। नतीजा यह हुआ कि मसीहा मस्जिद की सीढ़ियों पर खेल रहे रहमतुल्ला को डबल रोटी का टुकड़ा पकड़ाते में मियां मुसीफुद्दौला का पांव जो फिसला तो सीधा लोधिया के कब्रस्तान तक ले गया उन्हें।

जब मुसीफुद्दौला भी नहीं रहे तब गबरू चाचा जैसे कुछ बुजुर्गों ने फतेउल्ला के भाई करीमुल्ला को कहा कि वह अपने बड़े भाई की औलाद को आसरा दे। इस पर करीमुल्ला की बीबी गुलशनबी दहाड़ती है - "जो ये पौन दरजन खुद के जमा कर रखे हैं, पहले इनके लिए तो टुकड़े जुटा लो पूरे। बाद में औरों की परवरिश के चक्कर में पड़ना। "हीं ले आओ" कहना बहुत आसान होता है, मगर रोटी-कपड़ा जुटाने में सात जगह से फटी-चिरी जाती है। गबरूचाचाजी से ये क्यों नहीं कैते कि वो कौन-सी जात का छोकरा है! अजी, असल मुसलमानी का होता, तो घर से बाहर कदम न निकालता। मगर डोमिनी की औलाद है, चोट्टी! सुसरा दिनभर आवारागर्दी करने में रैवे है। अजी, मैं तो नूं कहूं के जो सुसरा इस लड़कपन में ही ऐसे दर-ब-दर डोलता फिरै है, कहीं जवानी पे आ गया ... तो न-जाने क्या-क्या गुल खिलायेगा। मुंहजरा बदशकुन तो इतना है कि तीसरे-से चौथे-पे भी नहीं पहुँचा, तीनों की बिसमिल्ला कर चुका। मैं तो न लाती सुसरी इस चलती-फिरती मुसीबत को अपने बाल-बच्चों वाले घर में। जिनके दीदी नरम होत हों, उन्हीं को मुबारक हो।"[१३५]

फतेउल्ला और खिमुली दीदी की मौत के समाचार सुनकर उदेराम से रहा नहीं जाता है ओर वह करीमुल्ला के यहाँ पहुँचता है और गुलशनबी से कहता है - "गुलशनदीदी, खिमुलीदीदी ने जिस दिन से अपना धरम डुबो दिया, उसी दिन से हमसे छूट गयी। मगर अब परलोक चली गई है, तो उसकी संतान को पालना मेरा धमर है।"[१३६] गलशनबीबी की स्थिति तो गुजराती में जिसे कहते हैं - "भावतुंतुं ने वैद्ये कह्युं" - अर्थात् वैद्य ने वही बताया जो खाने में अच्छा लगता था। वह उदेराम से कहती है - "ले जो, रे भय्ये! आखिर तेरी ही खिमुली दीदी की निशानी है। बेटा भी बिल्कुल शहजादे-सरीखा है। क्या करूँ, मेरा दिल तो यही कैता है, जहाँ ये पौन दरजन अपने हैं, एक ये और भी सही। मगर हमारे घर की अंदरूनी हालत तो या खुदा को ही मालूम है, या मुझे ही।"[१३७]

गलशनबी रहमतुल्ला को उदेराम के सुपुर्द कर देती है। उदेराम अपने

मन में सपने बुन रहां है - "इसका नाम रहमतिया की जगह रतनराम रख दूंगा। शरीर से दानेदार है। दो-चार बरसों में ही गाय-भैंसों की पूंछ मरोड़ने लग जाएगा। बाद में रंदे-बसुले की कारीगरी भी सिखा दी जाएगी। एक -बखत बे-बखत बोलने-चालने का बहाना भी हो जाएगा, कि रतनुवा रे, जरा इधर तो आ--- या --- जर उधर तो जा, भानिज ! --- हम दो बे - औलादों को भी मन बिलमाने का सहारा हो जाएगा।"[१३८]

परन्तु उदेराम की घरवाली भी महाकर्कशा और कलिहार औरत थी। उदेराम अभी पहुँचा ही था कि उसने शोर मचाना शुरू कर दिया था - "ठैरो हो, जरा उस मुसलिये को कंधों पर से उतार के, उधर ही रखो। और इस समय तो खैर, रात हो गई है - कल सवेरे ही इसको जहाँ से लाये हो, वहीं पहुँचा के आओ। इसको तो तुम इस समय ला रहे हो, मगर हमारे बिरादरों में से गंगाराम ससुरजी ने तो आज दोपहर से ही हमारी चिलम में तमाकू पीना छोड़ दिया है, कि "उदिया किससे पूछ के उस मुसलिये की संतान को लाने गया है। हमको धरमभिरष्ट करेगा।"... जाते-जाते गंगाराम ससुरजी ने यह भी कहा था कि "उदिया से कह देना, अगर उस मुसल्टे को उसने अपने घर में ठौर दी, तो बिरादरी से बरखास्त कर दिया जाएगा। .... तुम्हारी तो मति हरण हो गई है ! ऐसे जी बिलमाने वाले की हमें कोई जरूरत नहीं जो घर पहुँचने से पहले ही जी का जंजाल बन जाए। बाप रे, मुसल्टों की औलाद से तो हम निपूते ही भले।"[१३९]

उदेराम करीमुल्ला के पास तो जा नहीं सकता था, अतः गिरजे की सड़क के एक किनारे जो घंटीवाले सूरदास बाबा भीख मांगते है, उनके नजदीक श्वर, सूरदास बाबा के घट में बैठकर, रहमतुल्ले की पालना करना।"[१४०] रहमतुल्ला के चार-पाँच साल उनके साथ निकल गए। घंटीवाले बाबा उसे रामदास कहते थे। नंदर देवी के मंदिर का नादिया (सांड) घंटियों की आवाज से बिदका कि अपनी चपेट में बाबा को ले लिया और सदर अस्पताल गये तो फिर नहीं लोटे। रहमतुल्ला अब फिर अनाथ हो

गया। ढाई दिन तक इधर-उधर बिना कुछ खाये घूमता रहा। आखिर में हुसैन साहब उसे अपने घर ले गये। उनको तो मुफ्त का एक नौकर मिल गया। हुसैन साहब तो फिर भी ठीक थे, पर उनकी बेगम-गुलबदन बेगम - पूरी जल्लाद थी। खूब काम करवाती थी और खाने-पीने के नाम कुछ बची-खुची रोटी के टुकड़े डाल दिया करती थी। गुलबदन का व्यवहार रहमतुल्ला के प्रति कितना निर्दय और क्रूर था, उसका पता तो उसके निम्नलिखित कथन से चल जाता है -

"हाय अल्ला, हमारे इद्दे के अब्बा को भी न-जाने कब अकल आएगी। गुलबदन बेगम ने रोटियों की देगची एक ओर रखते हुए, अपना माथा पीट लिया- अरे, मेरे मौला ! इस सुसरे के पेट है कि रामढोल। चोरी का माल उड़ा-उड़ा के चौकोर बकस-जैसा लग रिया है। सेर-डेढ़-सेर तो चने चबा गया, ऊपर से एक दरजन के बराबर रोटियां साफ करके भी मुआ मेरे मुंह पे ऐसी निगा फिरा रिया है, जैसे नोच के खा जावेगा।"[१४१]

जब कि हकीकत यह है कि खाली पेट दलनी घुमाने में उसे चक्कर आ गये थे, अतः एक मुट्ठी चना उसने मुँह में डाल दिया था, जिस पर उस वह जोर का चांटा पड़ा था कि गले तक पहुँचे हुए चने भी फर्श पर लुढ़क पड़े थे। रात को सबके खा लेने पर बाकी बचे रोटी के कुछ टुकड़े ओर एक रोटी उसे मिली थी जिस पर गुलबदनबी एक दरजन रोटियां साफ करने की बात करती है। फिर भी रहमतुल्ला दुक्खम-सुक्खम कुछ साल हुसैनमियां के यहाँ निकाल लेता है। और कोई चारा भी तो नहीं था। पिछले पांच वर्षों से रहमतुल्ला फिर मसीहा मस्जिद की बगल में जरा-सा ऊपर की ओर "मसीहा मुस्लिम मार्केट" में आ गया है, जहाँ हलाल का गोश्त बिकता है। बूचड़खाने में बकरी का मुँह बंद करके उसकी बिसमिल्ला करते समय उसके हाथ कि छुरी कांप जाती है और बकरी के मुँह पर दबाव कम पड़ने से वह "बें-बें-बें" करने लगती है, तब मस्जिद का अजानी सुबराती मियां कड़कती हुई आवाज में रहमतुल्ला को गालियां देते हुए कहता है - "अबे ओ, मादरखसम, फुद्दी के ! ऐन मेरी खुदा की अजान के वक्त

बकरियों का गला रेतता है, रे? कसाई की औलाद, तेरे पालने वालों पे खुदा का कहर गिरे।''[१४२] रहमतुल्ला को मियां मुसीफुद्दौला की याद बेसाख्ता आती चली जाती हैं। ''रहमतुल्ला''और ''चील''जैसी कहानियों में अनाथ बच्चों की दयनीय और नारकीय स्थिति का चित्रण, मिलता है। अनाथ को कुमाऊँ बोली में ''छोरमूल्या'' कहते हैं और स्वयं जिन्दगी भोग चुके हैं, अतः दर्द की कसक यहाँ कुछ गहरा गई है।

(१९) दो दुःखों का एक सुख : ---

यह मिरदुला कानी नामक एक भिखारीन की कहानी है। इस पढ़कर धर्मवीर भारती की चर्चित कहानी ''गुल की बन्नो'' की याद आ जाती है। इसमें परिवेश अल्मोड़ा का है। मिरदुला (मृदुला) कानी है। उसके माँ-बाप का या घरवालों का कोई पता-ठिकाना नहीं है। बरसों से व एक अनाथ, बेसहारा जिन्दगी जी रही है। उसके रहने का भी कोई ठिकाना नहीं है। ''मिट्टी'' कहानी की गनेशी की तरह वह भी किसी-न-किसी दूसरे भिखारी का सहारा ढूंढ लेती है।

मिरदुला कानी करमिया कोढ़ी और अंधे सूरदास के साथ मंदिरों के सामने बैठकर भीख मांगती है। ये तीनों भीख साथ-साथ मांगते थे, पर रहते अलग-अलग थे। मिरदुला जगत मिस्त्री के यहाँ रहती थी। जात की वह ब्राह्मणी थी। पर उसे न उसके माँ-बाप संभाल सके न किसी रिश्तेदार ने सहारा दिया। एक बार बहला-फुसलाकर मणिहार कलारों का झुण्ड उसे मेले में उठाकर ले गया, और ''अपवित्तर''बनाकर मेले में ही छोड़कर चला गया था। वहीं से जगत मिस्त्री उसे उठा लाया था। अब वह उससे भीख मंगवाता है और शराब के नशे में धुत होकर पीटता और तरह-तरह से सताता रहता है। करमिया के आगे अपनी करम-कहानी कहते हुए वह जोरों से रो पड़ती है - ''हे राम ! कैसा पलीत जन्म दिया मुझ अभागिन को ? डोमड़े के घर पड़ी हूँ। भीख मांगती जीवन काटती हूँ। इस पर भी अपना कोई वश नहीं।''[१४३]

जगत मिस्त्री ने पिछली रात को मिरदाला को जूते और कलछी से बुरी तरह से पीटा था, क्योंकि उसने उस दिन अपनी दिन-भर की कमाई रामलीला के चन्दे में दे दी थी। पहले भी कभी-कभी मिरदुला मंदिरों में दो-चार पैसे चढ़ा देती थी, क्योंकि वह सोचती है कि यह जन्म तो व्यर्थ गया, कुछ दान-पुण्य करने से अगला जन्म कुछ सुधर सकता है। पर जब उसने पूरे दिन की कमाई दे दी, तो जगत मिस्त्री ने उसे बुरी तरह से पीटा।

करमिया और सूरदास दोनों मिरदुला को चाहते हैं। करमिया कोढ़ी है और कुछ बूढ़ा भी हो चला है, सूरदास जवान है, पर आँखों से अन्धा है। उन दोनों में मिरदुला कानी को लेकर अक्सर कहा-सुनी हो जाती है और करमिया कभी-कभी सूरदास को पीट भी देता है। मिरदुला सूरदास को चाहती है, क्योंकि एक तो वह जवान है और उसका कंठ भी बड़ा सूरीला है। करमिया के पास शहर से दूर एक खंडहरनुमा धरमशाला में रहने की जगह है। वह मिरदुला को पटाता है - ''अरे मिरदुला, अंधे-लूले-कोढियों की कोई जात नहीं होती। सब एक जात के भिखारी हैं और भिखारी का दुख कोई भिखारी ही समझ सकता है, ललली, तुझ-जैसी दुखियारी कानी से ममता इस पापी संसार के सही-सलामत लोगों को नहीं हो सकती। तेरी विपदा को कोई अपंग ही समझ सकता है।''[१४४] करमिया कहना तो ''कोई मुझ जैसा अपंग'' चाहता था, लेकिन फिलहाल सावधानी बरतना ही उसे ठीक लगा। करमिया जानता है कि उस अकेले के साथ मिरदुला नहीं आयेगी, अतः वह मिरदुला को समझाता है कि आइन्दा से वे तीनों साथ रहेंगे और मिरदुला उसकी बातों से सहमत हो जाती है।

तीनों साथ में भीख मांगत हैं और साथ में रहते हैं। मिरदुला पहले तो सूरदास को प्रेम करती है, पर बाद में करमिया भी धीरे-धीरे उसे गांठ लेता है। मिरदुला करमिया को बरदाश्त कर लेती है, क्योंकि उसके कारण ही उसे सूरदास का साथ मिला है। करमिया सूरदास और मिरदुला के प्यार के कड़ुए घूंट को इस लिए पी जाता है कि उसे भी अपनी देह के ताप को मिटाने का एक जरिया इस तरह मिल गया है। यों तीनों में एक

पारस्परिक समझौता हो जाता है। ये तीनों सहदाम्पत्य जीवन पर सहमति की मुहर लगा देते हैं। ऐसे में मिरदुला को गर्भ रहता है, तब उन दोनों में तर्क-वितर्क चलते हैं कि आनेवाले बच्चे का बाप कौन होगा। करमिया सोचता है कि बच्चा कोढ़ी हो और सूरदास सोचता है कि वह अन्धा हो। मिरदुला को जब दर्द उठता है तब करमिया एक दाई को बुला लाता है। दाई बच्चे को जन्म करवाती है और कहती है - "लो रे, तुम अपाहिजों के घर में दीपक जल गया।"[१४५] और फिर आगे वह कहती है - "भगवान की माया कौन जान सका। कोढ़ी-आंधों की औलाद और दीये जैसी जोत देतीं आँखें। गोरा-चिट्टा रंग। अच्छा हुआ, कानी पर ही गया बच्चा। अब जरा दस-पांच दिन इसके खाने-पीने का जतन रखना। पंडिताइन के यहाँ से कुछ दलिया-हलवा बनवा लाना। बड़ी दयावन औरत है। कानी के भजन बहुत सुने हैं उसने, अब भोजन की बारी है।"[१४६]

(२०) गोपुली गफूरन : ---

गोपुली का पति देवराम शिल्पकार जाति का था। पहाड़ों में डोम चमार को शिल्पकार कहते हैं। वह टटहा था। तांबे के कलश बनाता था और किरपल दत्त पुरोहित अपने जजमानो को तांबे के कलश देवराम से ही खरीदने की सलाह देते थे। तांबे के कलशों पर फूल-बेल बनाने की कला जो देवराम के पास थी, और किसी के पास नहीं। अतः पूरे अल्मोड़ा में देवराम टटहा का नाम था। पर इस नाम के पीछे उसकी घरवाली गोपुली का भी भरपूर योगदान है। देवराम की असमय मृत्यु के बाद गोपुली बेसहारा हो जाती है, तब वह अपने दो बच्चों को पालने के लिए अहमदअली फड़वाले के घर बैठ जाती है, और गोपुली से गफूरन हो जाती है। इसलिए कहानी का शीर्षक है "गोपुली गफूरन"। इसी कहानी की "थीम" को लेकर मटियानीजी ने इसी नाम से एक उपन्यास भी लिखा है।

गोपुली को कोई बहुत सुन्दर नहीं कह सकता। पर उसका व्यक्तित्व ही कुछ ऐसा था कि लोगों को चुंबक की तरह आकर्षित करता था। कहते हैं - एक नूर आदमी, सौ नूर कपड़ा। इसी को कहनी में - ''एक नूर नूर सौ, नूर श्रृंगार'' कहा गया है। भरी-गदरायी देह, चढ़ती जवानी और तांबे की नयी कलशी जैसी चमचमाती उमर और थोड़ा खिलंडरापन, इन सब कारणों से वह अल्मोड़ा मेइन बाजार का आकर्षण बनी हुई थी। सज-धजकर वह जब बाजार से गुजराती थी, तब शहर के कई लोगों की लार उसे देखते ही टपकने लगती थी।

गोपुली गरीब शिल्पकार देवराम की घरवाली थी , नीच जात होने के कारण उससे ओछी या नीची बातें करने में लोग किसी प्रकार का लाज-लिहाज नहीं बरतते थे। कहते हैं न --- ''गरीब की जोरू सबकी भाभी।'' दूसरे जिन लोगों से गोपुली या उसके पति देवराम के कुछ स्वार्थ थे, लेनदेन थे, वे लोग उससे कुछ ज्यादा ही छूटछाट लेते थे। उनकी दो-चार ठिठोलियां भी उसे बर्दाश्त करनी पड़ती थी। गोपुली का पति देवराम भी इसका बुरा नहीं मानता था। गोपाल शा की दुकान पर उन लोगों की उधारी चलती थी। किरपाल दत्त पुरोहित अपने जजमानों को देवराम के यहाँ से तांबे के कलश खरीदने को कहते थे। उनके कारण देवराम की रोजीरोटी चलती थी। खीमसिंह होटलवाला गरम-गरम शिकार-भटुवा गोपुली को आधे दामों पर खिलाता था। फलतः इन लोगों के गंदे मजाक और कुछ छोटी-मोटी हरकतें गोपुली बरदाश्त कर लेती थी। शुरू-शुरू में तो उसे भी थोड़ा अटपटा और विचित्र लगता था, परंतु बाद में वह उसकी अभ्यस्त हो गई और अपने रूप-सिंगार-जवानी का उसे कुछ-कुछ शरूर-नशा भी उसे हो चला था और इन चिहुलबाजियों और ठिठोलियों से उसे एक अकल्पनीय सुख भी मिलने लगा था। अब यदि ऐसा न हो तो उसे अटपटा लगता था। वह बाजार से गुजरे और दो-चार रसभरी ''कामेण्ट्स'' यदि सुनने को न मिले तो वह बेचैन-सा महसूस करती थी।

खीमसिंह होटलवाला गोपुली को ''गजगामिनी, मिरगलोचनी,

चन्द्रमुखी-मनमोहिनी कहता था;[147] तो गोपाल शा उसे कुत्ते के नीचे का कपास का गद्दा[148] कहते थे। ऐसा कहने के पीछे उनका आशय यह था कि कहाँ गोपुली और कहाँ देवराम। उनको मन-ही-मन लगता था कि "कौआ दैतरा ले गया।" वैसे खीमसिंह होटलवाला उसे "गजगामिनी" के स्थान पर "गजगामनी" कहता था, जिस पर किरवाल गुरू उसे कई बार टोक चुके थे कि "यार ठाकुर, गजगामिनी होता है, गजगामनी नहीं।"[149] उसके जवाब में खीमसिंह कहता था- "ऐसी मस्त तिरिया को गज के अलावा और गाभन भी कौन बना सकता है।"[150] तो प्रोफेसर तिवारी की "रायल लैंग्वेज़" में गोपुली अलमोड़ा शहर के दुकानदारों की कंजड़-बुद्धि के लिए "आई क्यू" और दूसरे कई लोगों के लिए "लिविंग स्टैण्डर्ड" और "केरेक्टर का क्राइटेरिया" थी।[151]

"सोने-चांदी के जेवरो के अलावा, गोपुली का सिंगार, लटी-फुन्नों और घाघरी-आंगड़ी का भी बड़ा सलोना था। बुलबुल कंघी से संवारी हुई लटी का फुन्नेदार धमेला कमर के नीचे ऐसे झूलता था, जैसे बछड़े को दूध पिलाते समय चंवर गाय की पूछ हिलती है। चार अंगुल चौड़े, किरपाल गुरू के विचारों के अनुसार चतुष्याराष्टक तरुणाई के पसीने से चमचमाते ललाट पर नगदार सूरज-छाप बिंदी और बिंदी के तले से नथी हुई चिपटी नाक की टिकुली तक पहुँची हुई अक्षत-पिठां की रेखा! .... ऐसे सज-संवर के गोपुली जब अलमोड़ा शहर की पथरौटी सड़कों पर चलती थी, तो औरों के बीच में राजा इन्दर के दरबार से छुटी हुई अप्सरा जैसी एकदम अलग ही दिखायी देती थी।"[152] यही पुरोहित किसपाल दत्त गोपुली को महर्षि पराशर ताी निषाद-पुत्री सत्यवती की कथा सुनाया करते थे। मुस्कुराते हुए गोपुली पूछती थी - "क्यों हो गुरू? कलशों की जरूरत है? मेरे देबराम कह रहे थे कि गुरू से पूछ आना जरा..."[153] गोपुली अपनी बात कह भी न पाती कि गुरू गदगदान होते हुए उसे अपने गोठवाले कमरे में खींच ले जाते और गोपुली के कर्णफल-जैसे उरोजों पर हाथ फिराते हुए, बच्चों की तरह फुसफुसा उठते थे कि -

"गोपू ! मुझे तो तेरे कलशों की जरूरत है ।"[१५४] "छि...छि" कहते हुए गोपुली खिलखिला उठती और आंचल से गुरू का हाथ निकालते हुए कहती - "कोई देख लेगा, तो तुमको क्या कहेगा? अच्छा हो गुरू, अब मैं चलती हूँ। अपने चित्त को ज्यादा चलायमान मत किया करो। ऊपर से कभी बौराण्ज्यू की नज़र पड़ गयी तो?"[१५५] इस प्रकार इन लोगों की प्रणयलीला को कहाँ ब्रेक मारती है, उसकी कला गोपुली को आती थी। सब लार टपकाते थे पर गोपुली अपने देवराम के अलावा किसी की नहीं हुई थी।

परंतु गोपुली की यह मौज-मस्ती, ये नाज़-नखरे, सब नदारद हो गये देवराम की अकाल मौत के साथ। कहते हैं न - "जब तक मालिक, तब तक खालिक ।" देवराम की मृत्यु ने उसके जीवन का नक्शा ही बदल डाला। सब किनारा कर गये। खीमसिंह शिकार-भटुवा तो खिलासकता था, पर गोपुली के बच्चों-हरराम और नरराम का पालन-पोषण उसक बश की बात नहीं थी। किरपाल गुरू उसे मदद कर सकते थे पर गोपुली को देवराम की कला आती नहीं थी। गोपुली की बिरादरी वालों ने ऐसी पीठ फेरी कि आसरा देने की जगह ताने मारने लगे। पहले अपनी स्थिति और यौवन के कैफ में गोपुली किसी को गिनती नहीं थी, अब वे लोग चुन-चुनकर बदला ले रहे थे। लिहाजा अपने बेटों को पालने के लिए गोपुली को गफूरन होना पड़ता है।

अहमद अली ने हरराम-नरराम का खतना करा दिया और उनके नाम रख दिये- हसरतअली और नसरतअली। आज़ाद ख्याल गोपुली बुरखे में आ गयी। यहाँ निम्न जातियों में जो धर्म-परिवर्तन होता है, उसके कारणों को भी देखा जा सकता है।

अहमदअली के यहाँ गोपुली का दम घुटने लगता है। पर महतारी गोपुली, मदमस्त गोपुली को मार डालती है। कहाँ रात-दिन का में कैद होकर रह जाना ! ऐसे में फेस्टिवल की बात सुनकर गोपुल को कुछ राहत होती है, पर उसमें भी बुरखा पहनकर जाने की बात उसके सारे सपनों पर तुषारापात कर देती है। जब शौकतअली की घरवाली बशीरन

गोपुली से पूछती है कि क्या उसे फेस्टिवल में मजा नहीं आया, तो उसके जवाब में गोपुली कहती है- "अपने मजे की बात तुम्हीं लोग जानो री ! मुझे तो जो कुछ मजा आना था, पिछले साल तक आ चुका। अब तो सिर्फ सज़ा बाकी रह गयी है।"[१५६] इस प्रकार बागों की कोयलिया "पिंजरे का पंछी" बनकर रह गयी।

(२१) प्रेतमुक्ति : ---

"प्रेतमुक्ति" मटियानीजी की चर्चित कहानियों में से हैं। राजेन्द्र यादव ने "एक दुनिया समानान्तर" में इस कहानी को स्थान दिया है। कहानी के केन्द्र में किशनराम है। वह केवल पांडे का हलिया है। उसकी कई पुश्तें पांडे पारिवार की सेवा में गई थीं। किशनराम के पिता केवल पांडे के पिता भेख पांडे के हलिया थे। यों यह सेवा-चाकरी पुश्त-दर-पुश्त चली आ रही थी। केवल पांडे और किशनराम गाँव की स्कूल में साथ-साथ पढ़त थे, परंतु बाद में केवल पांडे तो शहर पढ़ने चले गये और किशनराम उनका हलिया बन गया। यह कहानी इस तरह भी अलग पड़ती है कि इसमें पांडे-परिवार का चित्रण बहुत सहानुभूति के साथ हुआ है। प्रायः जमींदार और पुरोहितों के संदर्भ में उनके द्वारा जो निम्न जातियों का शोषण किया जाता है, उस आयामा को लिया जाता है, परंतु यहाँ पांडे परिवार को काफी उदार और संवेदनशील बताया है। केवल पांडे की माँ बौराणी कुसुमावती, केवल पांडे की पत्नी बौराणी चन्द्रावती आदि का चित्रण ममतामयी स्त्रियों के रूप में हुआ है। उनमें मानवीय भावों का अभाव नहीं है दयाममता है, प्रेम है, स्नेह है। गाँवों में जात-पांत और ऊँच-नीच के जो ख्याल हैं, उनसे बरी तो ये भी नहीं है, पर उनमें वह क्रूरता या दयाहीनता नहीं है। किशनराम की शादी भवानी से हुई थी, जो एक बेवफा स्त्री थी। किशनराम बेचारा सीधा-साद है। भवानी की उद्दाम जवानी उसके बश में नहीं रहती है और वह किसी और

के साथ भाग जाती है। पत्नी की इस बेवफाई के बावजूद किशनराम उसे बेइन्तिहा प्यार करता है। केवल पांडे जमींदारी और पुरोहिती का काम संभालते हैं। वैसे तो किशनराम और केवल पांडे लगभग हमउम्र रहे हैं। परंतु गरीबी के कारण किशनराम अब बुढ़िया गया है और खेती-बाड़ी का काम भी अब उससे नहीं संभलता है, पर पांडे परिवार उसको निकाल नहीं देते हैं। इधर किशनराम बारबार पांडेजी को प्रार्थना करता रहता है कि उसकी मृत्यु के बाद उसकी सद्‌गति के लिए जो धार्मिक क्रिया करनी पड़े वह वे करें। यद्यपि छोटी जातियों में ऐसा कुछ होता नहीं है, पर किशनराम को अपनी सद्‌गति की बड़ी चिन्ता रहती है। अतः केवल पांडे उसे आवश्यक क्रिया जरूर करेंगे। किशनराम की सौतेली माँ एक कलिहारी औरत थी और उसके पिता को बहुत सताती थी। किशनराम के पिता की मृत्यु हो गई थी और किशनराम ने सुन रखा था कि उसके पिता की सद्‌गति नहीं हुई है। वे प्रेत-योनि में गए हैं और अब उसकी सौतेली माँ को तंग करके अपना बदला ले रहे हैं। किशनराम ने अपनी सौतेली माँ की वह दशा देखी है कि किस तरह वह पागल हो गई थी। किशनराम अपनी पत्नी भवानी को बहुत चाहता है। उसकी बेवफाई के बावजूद वह उसे मन-ही-मन प्यार करता है और इसीलिए दूसरी शादी भी नहीं करता। परंतु इधर जैसे-जैसे वह बूढ़ा हो रहा था, उसका मन भवानी को लेकर काफी कलपता रहता था। वह सोचता रहता है कि मृत्यु के बाद यदि उसकी सद्‌गति नहीं हुई और उसकी प्रेतात्मा भवानी में चली गई तो उससे भवानी को काफी तकलीफ हो सकती है। यहाँ किशनराम में प्रेम की वह उदात्त भावना दिखाई पड़ती है, जिसका प्रायः संसार में अभाव है। जीते-जी तो उसने कभी भवानी का बुरा नहीं चीता, परंतु मरने के बाद प्रेतात्मा पर उसका बस थाड़ों ही चलेगा। अतः वह बारबार पांडेजी को अपनी सद्‌गति के लिए कहता रहता है।

एक बार पांडेजी अपने काम के लिए बाहर गए थे। लौटते समय उन्होंने दूर से देखा कि नदी के किनारे स्मशान-भूमि में कोई लाश जल रही है। उन दिनों किशनराम की तबियत अच्छी नहीं चल रही थी।

उनको अशंका हुई कि शायद किशनराम ही मर गया होगा। अतः वे सीधे वहाँ पहुँचते हैं। वहाँ किशनराम की टोपी भी उनको मिलती है। अतः उनको पक्का विश्वास हो जाता है कि किशनराम ही मर गया। पांडेजी को अपना दिया हुआ वचन याद आता है और वे तुरन्त नदी के पास जाकर किशनवा की सद्‌गति की क्रिया संपन्न करते हैं।

परंतु उसके बाद एकदम उन्हें स्मरण आता है कि दूसरे दिन उनके पिता को श्राद्ध है और एक अछूत की क्रिया कराने के बाद अब वे अपने पिता का श्राद्ध कैसे कर पायेंगे। पिता की आत्मा को कितना कलेश होगा। केवल पांडे को बड़ा पछतावा होता है और एक स्थान पर मारे दुःख और पीड़ा के वे बैठ जाते हैं। परंतु तभी अचानक सामने से किशनराम आता हुआ दिखता है। वह पांडेजी को ''पालागन'' कहते हुए बताता है कि उसकी माँ का देहान्त हो गया है और वह अभी-अभी उसका क्रिया-कर्म करके आ रहा है। किशनराम की इस बात को सुनते ही केवल पांडे प्रसन्न हो जाते हैं कि वे एक दोष से बच गये। इस प्रकार यह ''प्रेतमुक्ति'' किशन की माँ की ही नहीं है, केवल पांडे के मन में शंका-कुशंका का प्रेत था, उनकी भी मानो मुक्ति हुई है।

किशनराम का निम्नलिखित कथन उसकी आत्मा कितनी महान है उसकी प्रतीति कराता है: ''महराज अपने तरण-तारण की उतनी चिन्ता नहीं, इसी ध्यान से डरता हूँ कि कहीं प्रेत-योनि में गया, तो उसे न लग जाऊँ? हमारी सौतेली महतारी में हमारे बाप को प्रेत आने लगा है। महराज! उसके बेटे उसे गरम चिमटों से दागते हैं। वह नब्बे साल की बुढ़िया रोती-बिलबिलाती है। कहीं भवानी के लड़के भी उसे ऐसे ही न दागें? ... जिसे जीते-जी अपना सारा हम-हुकम होत भी कठोर वचन तक नहीं कह सका कि जाने दे रे किसनराम पुतली-जैसी उड़ती छोरी है, जहाँ उसकी मर्जी आये, वहीं बैठने दे.... उसे ही मरने के बाद दागते कैसे देख सकूंगा?''[१५७]

(२२) महाभोज : ---

''महाभोज'' मन्नू भण्डारी का उपन्यास भी है। वहाँ ''महाभोज'' का प्रतीक एक राजनीतिक व्यंग्य को उकेरने के लिए आया है, परंतु प्रस्तुत कहानी में ''महाभाज'' मृत्यु के बाद कराये जानेवाले प्रेत-भोजन के संदर्भ में यह आया है। शिवरती चेतराम की घरवाली है। चेतराम का बाप जब मर जाता है, तब शिवरती अपनी पचास तोला चांदी की करधनी बेचकर उसका सारा क्रिया-खर्च भलीभांति निबटाती है।

शिवराती गरीब है। कई महीनों से उसका पति चेतराम बेरोजगार है। उस पर ससुर बीमार है। उनकी दवा-दारू का खर्च भी उसे ही उठाना है। वह बेचारी मेहनत-मजदूरी करके किसी प्रकार गाड़ी खींच रही है। ऐसे में ससुर की मृत्यु हो जाती है। तब चेतराम तो पानी में बैठ जाता है कि कोई क्रिया-खर्च करने की जरूरत नहीं है। लोगों को गुड़ की डली देकर बिदा कर देंगे। पर शिवरती बड़ी जीवट वाली औरत हे। उसे देखकर मंजुल भगत कृत उपन्यास ''अनारो'' की अनारो तथा ''मुर्दाघर''(जगदम्बाप्रसाद दीक्षित) उपन्यास की मैना की स्मृति कौंध जाती है। यह एक संघर्षशील-जुझारू नारी है। अपनी गरीबी या बुढ़ापे का एकमात्र सहारा चांदी की करधनी बेचकर वह बिरादरी वालों को भोज देती है, इसी लिए यह ''महाभोज'' है। चेतराम तो बेखबर-सा रहता है और शिवरती सारा कारज निबटाती है। जब चेतरमा शिवरती से कहता है कि बिरादरी का नेग निभाना उससे नहीं होगा। यह पहाड़ उससे नहीं उठेगा, तब शिवरती कहती है - ''मोती के बापू, बाप के मरने का रोना सभी मरदों को शोभा देता हैगा, तुम्हारा यह जोरू के आगे का रोना मुझसे बर्दाश्त न होगा। अरे बेवकूफ मैं किसी राह चलते की बेसवा हूँ, या तुम्हारी घरवाली? जिस बहुरिया से अपनी घरगिरस्ती ही नसधी उसका तो मीरगंज में जा बैठना ही भला।''[१५८] इस प्रकार हम कह सकते हैं कि शिवरती एक मरद औरत है।

शिवरती के चार बच्चे हैं, पांचवां आने को है। चेतराम को शरीर-

सुख की इच्छा होती है, तब वह कहती है - "चेतराम के बापू , दम तोड़ते बाप की नाक के नीचे यह बेहयाई ठीक नहीं। आन-औलाद पर बुरा असर पड़ता है।"[१५९] तब चेतराम शिवरती से कुछ पैसे मांगता है कि जी बहुत वैसा हो रहा है तो वह कुछ पैसे दे तो मीरगंज वाली सलीमा (एक वेश्या) के हो आवें। शिवरती कुछ बोले बिना तीन रूपये उसके हाथ में रख देती है और फिर कहती है - "तुममें लम्बी बीमारी के बाद अब बर्दाश भी तो ना रही।"[१६०] ऐसी है शिवरती और उसकी कहानी है "महाभोज"। हिन्दी साहित्य-जगत में ऐसे अमर पात्रों को लाने का श्रेय मटियानीजी का ही जाता है।

अन्य कहानियाँ : ---

उपर्युक्त कहानियों के अलावा और भी कुछ कहानियाँ हैं, जिनमें दलित जीवन का किसी-न-किसी रूप में चित्रण हुआ है। यहाँ बहुत संक्षेप में उन कहानियों के कथ्य पर प्रकाश डालने का उपक्रम है।

"अहिंसा" कहानी की बिन्दा भी "महाभोज- की शिवरती की भांति एक जूझारू औरत है। तांगे में लगी घोड़ी की भांति दिन-रात वह मेहनत-मजदूरी के कामों में लगी रहती है और किसी प्रकार अपनी घर-गृहस्थी की गाड़ी खींचती रहती है। पर उसे ग्रैंग्रिन हो जाता है। उसका पति जगेसर जैसे-तैसे पैसों का जुगाड़ करके उसे शहर ले जाता है और आपरेशन के लिए एडवान्स के पैसे भी डा. गुदौलिया को दे आता है। लेकिन डाक्टरों की हडताल हो जाती है और बिन्दा का आपरेशन नहीं हो पाता। उसमें उसकी मौत हो जाती है। डा. गुदौलिया एडवान्स के पैसे हड़प जाता है। जगेसर अपना मानसिक संतुलन खो बैठता है और उसके सिर पर अपना वसूला पूरी ताकत से दे मारता है।"[१६१]

"हत्यारे" कहानी एक राजनीतिक व्यंग्य की कहानी है यह कहानी "छिद्दा पहलवानवाली गली" और "भेड़ें और गड़रिये" दोनों कहानी-संग्रहों में संकलित है। इसमें बाबू संकटमोचन सिंह तथा चौधरी

हरफूलचन्द जैसे नेता लोग छोटी जाति के लोगों का कैसा राजनीतिक उपयोग करते हैं और समय आने पर उनको मरवा भी डालते हैं, इस हकीकत का यथार्थ चित्रण किया है। रामचरण केवट ने नगरपालिका के अधिकार-क्षेत्र की जमीन गैर-कानूनी तरीकों से बिल्डिंग बनायी थी। रामचरण उन दलितों में हैं जो इधर कुछ हैसियत रखने लगा है। उसके पास बंदूक भी है। एडवोकेट श्रीवास्तव भी रामचरण को समझाता है, पर नेता लोग उसे दलित जाति के नाम पर आंदोलन चलाने की सलाह देते हैं। उधर निर्धारित समय नगरपालिका का अफसर बुलडोजर लेकर आ जाता है। रामचरण और शिवचरण (रामचरण का पुत्र) दोनों बिल्डिंग की छत पर चढ़ जाते हैं। दोनों नेता ऐन वक्त पर गायब हो जाते हैं। ताव में आकर ये लोग पुलिस पर गोली चला देते हैं और जवाबी कार्रवाही में ये दोनों बाप-बेटे मारे जाते हैं। जब चौधरी हरफूलचन्द की घरवाली रामचरण की औरत रामरती को कहती है कि ''ई ससुर पुलिस लोगन का सत्यानाश होवे।'' तब उसके जवाब में रामरती दहाड़ती हुई कहती है - ''पुलिसवाले तो शिवचरण के बाप के गोली चला बैठने के बाद गोली चलाये हैं। हमारे इनको तो सरकार नहीं मारी हैं, बाकी ई राक्षस ससुर ठाकुर संकटमोचन और तुम्हारे बुढ़ऊ हरफूल चौधरी मरवाय दिये हैं।''[१६२]

''भंवरे की जात'' कहानी में मिरासीनों की जिन्दगी का चित्रण है। मीरासन पहले नाचने-गाने का काम करती थीं, पर अंग्रेजों के राज के जाने के बाद उनके व्यवसाय में भी ओट आयी है और अब उनको पेट भरने के लिए शरीर का सौदा भी करना पड़ता है। इस कहानी में पहाड़ी स्त्रियों के दुःख-दर्द को भी लेखक ने संवेदना के साथ उकेरा है। कहानी-नायक रामसिंह हवालदार अपनी पत्नी रुकमी को लतिया-लतिया कर निकाल देता है। उसका दिल कुंतुली मिरासन पर आ गया है। कुंतुली की माँ चिणकुली कुंतुली को अपने हक के लिए काफल गाँव भेजती है, पर वहाँ जाकर कुंतुली रूक्मी को जब देखती है, तो उसका हृदय द्रवित हो जाता है - ''मैं तो नाच-गा के भी जिन्दगी ठेल लूंगी, लेकिन तुम कहाँ तक मायके में पड़ी रहेगी। जाओ, मैंने अपना दावा छोड़ा।''[१६३]

"बर्फ की चट्टाने" कहानी इस नाम के दोनों संकलनों में है। इसमे कुमाऊं प्रदेश के गरीब-निम्न जाति के लोग जो सेना में भर्ती हो जाते हैं और उन पर दुकानदार रतन ठाकुर जैसे लोग जो फब्तियां कसते रहते हैं, उसकी कसक को उकेरा गया है। रतन ठाकुर कथा-नायक को ध्यान में रखकर कहता रहता है कि दुनिया भर के भिखमंगे और चिलमनंगे लोग फौज में भर्ती हो जाते हैं। उनका सारा ध्यान तो अपने घर और बीबी-बच्चों में लगा रहता है। वह भला क्या लड़ेगा? लड़े तो वह मर्द मराठा, जिसे दमड़ी छोड़ अपनी चमड़ी भी प्यारी नहीं होती है। रतन ठाकुर की ये बातें ही "बर्फ की चट्टानें" हैं जो कथा-नामक की छाती में धंस जाती हैं. एक स्थान पर अपने स्वगत कथन में वह कहता है - "काश, रतन ठाकुर, तुम इस बात को समझ पाते कि जिनके भाई-बेटे-पति फौज में होते हैं, लड़ा के दिनों उन सभी के सुख मौत की अशुभ आशंकाएँ किसी तरह घेर लेती हैं। उनके लिए त्यौहार, उत्सव और मेले सब कितने उदास और फीके पड़ जाते हैं। उनकी हर सांस कैसे एकदम उनके कानों के पास सिमटी हुई रहती है, उन दिनों।"[१६४]

"कुसुमी" कहानी में पहाड़ी जीवन का एक दूसरा आयाम हमारे सामने आता है। कुमाऊं में छोटी जाति की कोई स्त्री यदि विधवा होती है, तो उसकी शादी उसके देवर के साथ कर दी जाती है। गुजरात में उसे "दियरवटा" कहते हैं और पंजाब में उसे "चादर डालना" कहते हैं। राजेन्द्रसिंह बेदी का उपन्यास "एक चाहर मैली सी" इसी कथा-सूत्र परनिर्मित है। परंतु जहाँ प्रस्तुत उपन्यास का नायक इस रिश्ते के लिए तैयार नहीं था, वहाँ इस कहानी का नायक केसरसिंह इस रिश्ते को मानता है, पर मारे संकोच के वह अपनी भौजी और भावी पत्नी के सामने पूरी तरह से खुल नहीं पाता है। कुसुमी का पति निमोनिया का शिकार हो जाता है। खेती-बाड़ी का सारा काम कुसुमी संभालती थी। इस पर सास-ससुर की सेवा भी भक्ति-भाव से करती थी। ससुर मधनसिंह ऐसी लक्ष्मी-सी बहू को खोना नहीं चाहते थे। इस प्रकार इसके साथ आर्थिक पक्ष भी

जुड़ा हुआ है ।

"सावित्री" कहानी की सावित्री मिरासीन है । उसकी माँ कलावती रात-दिन उसे मिरासिनोंवाले गुर सिखाती रहती है, पर सावित्री के संस्कार कुछ अलग प्रकार के हैं । बलराम ठाकुर विधुर है । उसका लड़का उसकी ससुराल में पड़ा हुआ है । ठाकुर दण्डकेश्वर के मेले में आ रहा है । कलावती ठाकुर से अधिक से अधिक पैसे ऐंठने की सीख देती है, पर सावित्री माँ की शिक्षा भूल जाती है और ठाकुर के बिना माँ के बेटे की माँ बनने का और उस "छोरमूल्या" बच्चे को पूरा लाड़-प्यार दने का पक्का फैंसला कर लेती है और एक अच्छी गृहस्थिन की भांति ठाकुर से कहती है- "आखिर खर्च करने का भी एक तरीका होता है । तुम तो सौ-सौ के नोट ऐसे निकाल देते हो, जैसे हम लोगों का आगेपीछे खानेवाला और कोई है ही नहीं? और हाँ, यह तो मैं तुमसे पूछना ही भूल गयी । पहली वाली दीदी का मुन्ना आखिर कब तक ननिहाल में पड़ा रहेगा दूसरे के भरोसे? बेचारा माँ की ममता को तरसता होगा वहाँ ....मेले से लौटते ही उसको घर वापस ले आना है । अब ये -ए-ऐ बन्दरों की तरह क्या देख रहे हो मेरे को? अब तो तुम चार-पांच बच्चों के बाप बन चुके होते?"[१६५] यह कहानी "गृहस्थी" शीर्षक से अन्यत्र भी प्रकाशित हुई है ।

"चुनाव" एक गहरे विषाद और प्रेम के अवसाद की कहानी है । पंडित कृष्णानंद ब्राह्मण है । कमला शिल्पकारनी को वह तहे दिल से चाहता है । पर जाति की दीवार उनके बीच चट्टान की तरह आ जाती है । अतः कृष्णानंद कमला को लेकर शहर भाग जाता है, और विधि की विडंबना या विचित्रता यह है कि जो कृष्णानंद बचपन से अपने जातिगत संस्कारों के कारण ईसाइयों को धिक्कारता था, अपने प्रेम के कारण ईसाई होने पर विवश हो जाता है । पर कृष्णानंद के लिए तो "माया मिली न राम" वाली स्थिति निर्मित होती है । जिस कमला के लिए वह अपना गाँव छोड़ता है, अपनी जात छोड़ता है, अपना धर्म छोड़ता है, वही कमला अब मिस कैथरिन बनकर पादरी जानसन चौहान के भतीजे विलसन चौहान के साथ बैडमिण्टन खेलती है और दिन-रात उसके साथ घूमती

रहती है। उसे अब कृष्णानंद की परवाह नहीं। वह अब गाँव की कमला शिल्पकारनी नहीं है। पादरी जानसन चौहान कृष्णानंद को धर्म-वचन सुनाते हैं - ''प्रभु उन सभी लोगों पर प्रसन्न रहते हैं जो ईर्ष्या-द्वैष से मुक्त और सहनशील हैं। जो अपने जीवन के तमाम सत्यों को सहज भाव से स्वीकारते हैं और उन्हें प्रभु की शरण में समर्पित करके, खुद मुक्त हो जाते हें।... धर्म इस बात की पूरी-पूरी आजादी देता है कि औरत अपने लिए अनुपयुक्त प्रेमी या पति को तलाक देकर, उपयुक्त और युक्त प्रेमी या पति को तलाक देकर, उपयुक्त और सही प्रेमी या पति का चुनाव कर ले।''[१६६] और कृष्णानंद चुनाव कर लेता है आत्महत्या के द्वारा अपनी मौत का।

इन कहानियों के अतिरिक्त ''जिबूका'', ''लाटी'', ''हलाल'', ''कपिला'', ''भविष्य'', ''इल्ले स्वामी'' आदि कहानियों में दलित जीवन के कुछ आयाम मिलते हैं।

निष्कर्ष

अध्याय के समग्रावलोकन से निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता हे कि मटियानीजी की दलित-विमर्श विषयक दृष्टि किसी वाद या पूर्वाग्रह से प्रेरित नहीं है। उनकी कहानियों में एक तरफ जहाँ हमें कुमाऊँ का पहाड़ी प्रदेश मिलता है, वहाँ दूसरी तरफ महानगरीय परिवेश में बम्बई के जीवन का चित्रण मिलता है। बम्बई के उस जीवन को भी हमने दलित-जीवन के अन्तर्गत ही रखा है जो झोंपड़पट्टी और फुटपाथ के लोगों का है। यहाँ कोढ़ी हैं, भिखारी हैं, चोर-बदमाश हैं, पाकेटमार हैं। दलित जातियों में जो एक नयी चेतना उभरकर आ रही है, उसका चित्रण भी मटियानीजी की कहानियों में मिलता है। इन कहानियों में जहाँ उन्होंने तथाकथित ऊँची और संपन्न जातियों के भीतर के खोखलेपन और सडांध को चित्रित किया है, वहाँ सडांध-भरा जीवन जी रहे लोगों में भी कहीं-

कहीं इन्सानियत के दीये झिलमिला रहे हैं, उसे भी रेखांकित किया है। इनमें कुछ ऐसे पात्र भी मिल जायेंगे, जिनमें कहीं बहुत भीतर, मनुष्य होने का एहसास बाकी हैं, तो कहीं ऐसे पात्र भी हैं जो अपने मनुष्य होने की चेतना को खो चुके हैं। लाख गरीबी और द्ररिद्रता के बावजूद अपने मान-सम्मान और ''मरजाद'' के लिए जूझनेवाली, जीवटवाली नारियां भी यहाँ दृष्टिगत हो सकती हैं। यहाँ जीवन के कीचड़ में खिलते हुए कमलों को हम देख सकते हैं।

: सन्दर्भानुक्रम :

१- दृष्टव्य : आठ श्रेष्ठ कहानियाँ : सं. डॉ. सत्यकाम विद्यालंकार : शिक्षा भारती प्रकाशन : दिल्ली।

२- दृष्टव्य : आठ कहानियाँ : सं. डॉ. ललित शुक्ल : राजकमल प्रकाशन : दिल्ली।

३- दृष्टव्य : प्रतिनिधि कहानियाँ : सं. डॉ. शेष आनंद मधुकर : जय भारती प्रकाशन : इलाहाबाद।

४- दृष्टव्य : कथान्तर : डॉ. परमानंद श्रीवास्तव : राजकमल प्रकाशन : दिल्ली।

५- कहानी-विविधा : सं. डॉ. देवी शंकर अवस्थी : राजकमल प्रकाशन : दिल्ली।

६- दृष्टव्य : सार्थक कहानियाँ : सं. डॉ. दूधनाथ सिंह : सुमित्र प्रकाशन : इलाहाबाद।

७- दृष्टव्य : एक दुनिया समानान्तर : सं. राजेन्द्र यादव : अक्षर प्रकाशन : दिल्ली।

८- बर्फ की चट्टाने : शैलेश मटियानी : भूमिका से : पृ. १३

९- बर्फ की चट्टाने : शैलेश मटियानी : भूमिका से : पृ. ११

१०- बर्फ की चट्टाने : शैलेश मटियानी : भूमिका से : पृ.९

११-बर्फ की चट्टाने : शैलेश मटियानी : भूमिका से : पृ. ११

१२-हंस : जून - २००१ : पृ.११

१३-हंस :जून - २००१ : पृ.२५

१४-भूमिका : मेरी तैंतीस कहानियाँ : शैलेश मटियानी : पृ. २५

१५-सतजुगिया आदमी : बर्फ की चट्टानें (बड़ा संकलन) : पृ. १३२

१६-सतजुगिया आदमी : बर्फ की चट्टानें (बड़ा संकलन) : पृ. १३२

१७-सतजुगिया आदमी : बर्फ की चट्टानें (बड़ा संकलन) : पृ. १३७

१८-सतजुगिया आदमी : बर्फ की चट्टानें (बड़ा संकलन) : पृ. १३७

१९- सतजुगिया आदमी : बर्फ की चट्टानें (बड़ा संकलन) : पृ. १३९

२०- धुधुतिया त्यौहार : बर्फ की चट्टानें : पृ. ५५५

२१- धुधुतिया त्यौहार : बर्फ की चट्टानें : पृ. ५५५

२२- धुधुतिया त्यौहार : बर्फ की चट्टानें : पृ. ५५७

२३- धुधुतिया त्यौहार : बर्फ की चट्टानें : पृ. ५६१

२४- धुधुतिया त्यौहार : बर्फ की चट्टानें : पृ. ५६१

२५- धुधुतिया त्यौहार : बर्फ की चट्टानें : पृ. ५६२

२६- धुधुतिया त्यौहार : बर्फ की चट्टानें : पृ. ५६२

२७- धुधुतिया त्यौहार : बर्फ की चट्टानें : पृ. ५६२

२८- धुधुतिया त्यौहार : बर्फ की चट्टानें : पृ. ५५८

२९- धुधुतिया त्यौहार : बर्फ की चट्टानें : पृ. ५५८

३०- नंगा : बर्फ की चट्टानें : पृ. १६१

३१- नंगा : बर्फ की चट्टानें : पृ. १६१

३२- नंगा : बर्फ की चट्टानें : पृ. १६१

३३- नंगा : बर्फ की चट्टानें : पृ. १६४

३४- नंगा : बर्फ की चट्टानें : पृ. १६५

३५- नंगा : बर्फ की चट्टानें : पृ. १६७

३६- लीक : मेरी तैंतीस कहानियाँ : पृ. १२७

३७- लीक : मेरी तैंतीस कहानियाँ : पृ. १२८

३८- लीक : मेरी तैंतीस कहानियाँ : पृ. १२७

३९- लीक : मेरी तैंतीस कहानियाँ : पृ. १२९

४०- लीक : मेरी तैंतीस कहानियाँ : पृ. १३२

४१- लीक : मेरी तैंतीस कहानियाँ : पृ. १३२

४२- द्रष्टव्य : "एक कॉप चा : दो खारी बिस्किट": मेरी तैंतीस कहानियाँ : पृ.८२

४३- द्रष्टव्य : "एक कॉप चा : दो खारी बिस्किट": मेरी तैंतीस कहानियाँ : पृ.८४

४४- द्रष्टव्य : "एक कॉप चा : दो खारी बिस्किट": मेरी तैंतीस कहानियाँ : पृ.८४

४५- द्रष्टव्य : "एक कॉप चा : दो खारी बिस्किट": मेरी तैंतीस कहानियाँ : पृ.८६

४६- द्रष्टव्य : "एक कॉप चा : दो खारी बिस्किट": मेरी तैंतीस कहानियाँ : पृ.८७

४७- द्रष्टव्य : "एक कॉप चा : दो खारी बिस्किट": मेरी तैंतीस कहानियाँ : पृ.८७

४८- द्रष्टव्य : चिथड़े : मेरी तैंतीस कहानियाँ : पृ.३३

४९- द्रष्टव्य : चिथड़े : मेरी तैंतीस कहानियाँ : पृ.३४

५०- द्रष्टव्य : चिथड़े : मेरी तैंतीस कहानियाँ : पृ.३६

५१- द्रष्टव्य : चिथड़े : मेरी तैंतीस कहानियाँ : पृ.३७

५२- गरीबुल्ला : मेरी तैंतीस कहानियाँ : पृ.११८

५३- गरीबुल्ला : मेरी तैंतीस कहानियाँ : पृ.११६-११७

५४- गरीबुल्ला : मेरी तैंतीस कहानियाँ : पृ.११६

५५- गरीबुल्ला : मेरी तैंतीस कहानियाँ : पृ.१२१

५६- गरीबुल्ला : मेरी तैंतीस कहानियाँ : पृ.१२१

५७- गरीबुल्ला : मेरी तैंतीस कहानियाँ : पृ.१२३

५८- गरीबुल्ला : मेरी तैंतीस कहानियाँ : पृ.१२३

५९- दैट माय फादर बाल जी : मेरी तैंतीस कहानियाँ : पृ.७२

६०- दैट माय फादर बाल जी : मेरी तैंतीस कहानियाँ : पृ.७३

६१- दैट माय फादर बाल जी : मेरी तैंतीस कहानियाँ : पृ.७३

६२- पत्थर : मेरी तैंतीस कहानियाँ : पृ.१४१

६३- पत्थर : मेरी तैंतीस कहानियाँ : पृ.१४१

६४- पत्थर : मेरी तैंतीस कहानियाँ : पृ.१४१

६५- पत्थर : मेरी तैंतीस कहानियाँ : पृ.१४२

६६- पत्थर : मेरी तैंतीस कहानियाँ : पृ.१४५

६७- पत्थर : मेरी तैंतीस कहानियाँ : पृ.१४५

६८- पत्थर : मेरी तैंतीस कहानियाँ : पृ.१४६

६९- पत्थर : मेरी तैंतीस कहानियाँ : पृ.१४६

७०- फर्क, बस इतना है : मेरी तैंतीस कहानियाँ : पृ.१०५

७१- फर्क, बस इतना है : मेरी तैंतीस कहानियाँ : पृ.१०५

७२- फर्क, बस इतना है : मेरी तैंतीस कहानियाँ : पृ.१०८

७३- फर्क, बस इतना है : मेरी तैंतीस कहानियाँ : पृ.१०६

७४- फर्क, बस इतना है : मेरी तैंतीस कहानियाँ : पृ.१०७

७५- फर्क, बस इतना है : मेरी तैंतीस कहानियाँ : पृ.१०९

७६- फर्क, बस इतना है : मेरी तैंतीस कहानियाँ : पृ.१०७

७७- फर्क, बस इतना है : मेरी तैंतीस कहानियाँ : पृ.१०८

७८- फर्क, बस इतना है : मेरी तैंतीस कहानियाँ : पृ.१०९

७९- भूमिका : मेरी तैंतीस कहानियाँ : पृ.२५

८०- बिट्ठल : मेरी तैंतीस कहानियाँ : पृ. ७४

८१- बिट्ठल : मेरी तैंतीस कहानियाँ : पृ. ७५

८२- बिट्ठल : मेरी तैंतीस कहानियाँ : पृ. ७७

८३- बिट्ठल : मेरी तैंतीस कहानियाँ : पृ. ७७

८४- बिट्ठल : मेरी तैंतीस कहानियाँ : पृ. ७९

८५- बिट्ठल : मेरी तैंतीस कहानियाँ : पृ. ७९

८६- बिट्ठल : मेरी तैंतीस कहानियाँ : पृ. ८०

८७- बिट्ठल : मेरी तैंतीस कहानियाँ : पृ. ८०

८८- बिट्ठल : मेरी तैंतीस कहानियाँ : पृ. ८०

८९- चील : त्रिज्या : पृ. ९४

९०- चील : त्रिज्या : पृ. ९४

९१- चील : त्रिज्या : पृ. ९६

९२- चील : त्रिज्या : पृ. १००

९३- चील : त्रिज्या : पृ.१००

९४- चील : त्रिज्या : पृ. १००

९५- चील : त्रिज्या : पृ. १००

९६- चील : त्रिज्या : पृ. ९९

९७- चील : त्रिज्या : पृ. १०१

९८- चील : त्रिज्या : पृ. १०३

९९- चील : त्रिज्या : पृ. १०३

१००- प्यासा : त्रिज्या : पृ. ११९

१०१- प्यासा : त्रिज्या : पृ. ११७

१०२- प्यासा : त्रिज्या : पृ. ११७

१०३- प्यासा : त्रिज्या : पृ. ११७

१०४- प्यासा : त्रिज्या : पृ. ११८

१०५- प्यासा : त्रिज्या : पृ. ११८

१०६- प्यासा : त्रिज्या : पृ. ११८

१०७- द्रष्टव्य : प्यासा : त्रिज्या : पृ. ११९

१०८- द्रष्टव्य : प्यासा : त्रिज्या : पृ. ११९

१०९- इब्बू मलंग : त्रिज्या : पृ. १४९

११०- इब्बू मलंग : त्रिज्या : पृ. १५१

१११- इब्बू मलंग : त्रिज्या : पृ. १५१

११२- इब्बू मलंग : त्रिज्या : पृ. १४९-१५०

११३- इब्बू मलंग : त्रिज्या : पृ. १५१

११४- इब्बू मलंग : त्रिज्या : पृ. १५६

११५- इब्बू मलंग : त्रिज्या : पृ. १५७-१५८

११६- इब्बू मलंग : त्रिज्या : पृ. १५८

११७- इब्बू मलंग : त्रिज्या : पृ. १५९

११८- मिट्टी : त्रिज्या : पृ. १७४

११९- मिट्टी : त्रिज्या : पृ. १७४

१२०- मिट्टी : त्रिज्या : पृ. १८१

१२१- मिट्टी : त्रिज्या : पृ. १६९

१२२- मिट्टी : त्रिज्या : पृ. १७६

१२३- मिट्टी : त्रिज्या : पृ. १७९

१२४- मिट्टी : त्रिज्या : पृ. १७९-१८०

१२५- मैमूद : त्रिज्या : पृ. १०४-१०५

१२६- मैमूद : त्रिज्या : पृ. १०६

१२७- मैमूद : त्रिज्या : पृ. १०६

१२८- मैमूद : त्रिज्या : पृ. ११३

१२९- द्रष्टव्य : भय : त्रिज्या : पृ. १६०

१३०- द्रष्टव्य : भय : त्रिज्या : पृ. १६०

१३१- द्रष्टव्य : भय : त्रिज्या : पृ. १६०

१३२- शैलेश मटियानी की कहानियों में नारी के विविध रूपों का चित्रण : डॉ. श्रीमती सुषमा शर्मा : पृ. १२७-१२८

१३३- भय : त्रिज्या : पृ. १६८

१३४- रहमतुल्ला : भविष्य तथा अन्य कहानियाँ : पृ. ८८

१३५- रहमतुल्ला : भविष्य तथा अन्य कहानियाँ : पृ. ८९-९०

१३६- रहमतुल्ला : भविष्य तथा अन्य कहानियाँ : पृ. ९०

१३७- रहमतुल्ला : भविष्य तथा अन्य कहानियाँ : पृ. ९०

१३८- रहमतुल्ला : भविष्य तथा अन्य कहानियाँ : पृ. ९१

१३९- रहमतुल्ला : भविष्य तथा अन्य कहानियाँ : पृ.९१-९२

१४०- रहमतुल्ला : भविष्य तथा अन्य कहानियाँ : पृ. ९२

१४१- रहमतुल्ला : भविष्य तथा अन्य कहानियाँ : पृ. ९६-९७

१४२- रहमतुल्ला : भविष्य तथा अन्य कहानियाँ : पृ. ९७

१४३- दो दुखों का एक सुख : बर्फ की चट्टाने : पृ. ५३७

१४४- दो दुखों का एक सुख : बर्फ की चट्टाने : पृ. ५३७

१४५- दो दुखों का एक सुख : बर्फ की चट्टाने : पृ. ५४४

१४६- दो दुखों का एक सुख : बर्फ की चट्टाने : पृ. ५४५

१४७- गोपुली गफूरन : पापमुक्ति तथा अन्य कहानियाँ : पृ. ४८

१४८- गोपुली गफूरन : पापमुक्ति तथा अन्य कहानियाँ : पृ. ४८

१४९- गोपुली गफूरन : पापमुक्ति तथा अन्य कहानियाँ : पृ. ४८

१५०- गोपुली गफूरन : पापमुक्ति तथा अन्य कहानियाँ : पृ. ४८

१५१- गोपुली गफूरन : पापमुक्ति तथा अन्य कहानियाँ : पृ. ४८

१५२- गोपुली गफूरन : पापमुक्ति तथा अन्य कहानियाँ : पृ. ४८

१५३- गोपुली गफूरन : पापमुक्ति तथा अन्य कहानियाँ : पृ. ५१

१५४- गोपुली गफूरन : पापमुक्ति तथा अन्य कहानियाँ : पृ. ५१

१५५- गोपुली गफूरन : पापमुक्ति तथा अन्य कहानियाँ : पृ. ५१

१५६- गोपुली गफूरन : पापमुक्ति तथा अन्य कहानियाँ : पृ. ५९

१५७- प्रेत-मुक्ति : बर्फ की चट्टानें : पृ. ४७२

१५८- महाभोज : भविष्य तथा अन्य कहानियाँ : पृ. १०७

१५९- महाभोज : भविष्य तथा अन्य कहानियाँ : पृ. ९९

१६०- महाभोज : भविष्य तथा अन्य कहानियाँ : पृ. १०१

१६१- द्रष्टव्य : अहिंसा : अहिंसा तथा अन्य कहानियाँ : पृ. ४५

१६२- हत्यारे : छिद्दा पहलवान वाली गली : पृ. ८०

१६३- भंवरे की जात : बर्फ की चट्टानें : पृ. ५७-५८

१६४- बर्फ की चट्टानें : बर्फ की चट्टानें : पृ. ७३-७४

१६५- सावित्री : बर्फ की चट्टानें : पृ. १७४-१७५

१६६- चुनाव : बर्फ की चट्टानें : पृ. ४२७